आई एस एस एन : 0972-169X
पंजीयन क्रमांक 70269/98 के अंतर्गत भारत सरकार के समाचार पत्रों के रजिस्ट्रार द्वारा पंजीकृत
डाक पंजीयन क्रमांक : डी एल : 11360/2004

ड्रीम 2047

अप्रैल 2004 | खण्ड 6 | अंक 7 | मूल्य रुपए : 5.00

विज्ञान प्रसार समाचार

इस अंक में

संपादकीय
नेत्र, दृष्टि और शुक्र पारगमन (पृष्ठ 3)

अपंगकारी रोग: पोलियो के उन्मूलन का वैश्विक प्रयास (पृष्ठ 13)

छुट्टियां: मौज-मस्ती के साथ सेहत भी (पृष्ठ 20)

1874 के शुक्र पारगमन का पठानी सामंत चंद्रशेखर द्वारा अवलोकन (पृष्ठ 21)

शुक्र पारगमन - प्रशिक्षण कार्यक्रम

विज्ञान प्रसार ने राविप्रौसंप के साथ आगामी 08 जून, 2004 को होने वाले शुक्र पारगमन की घटना से जुड़ी विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी लोकप्रियकरण गतिविधियों का देशव्यापी कार्यक्रम शुरू किया है। दक्षिणी क्षेत्र के प्रमुख संसाधन व्यक्तियों के लिए प्रशिक्षण कार्यक्रम श्रृंखला का पहला कार्यक्रम हैदराबाद में 18–19 मार्च 2004 को आयोजित किया गया था। इसमें आंध्र प्रदेश, तमिलनाडु, केरल, कर्नाटक, अंडमान निकोबार द्वीपों और पांडिचेरी से आए लगभग पैंतालीस लोगों ने भाग लिया।

कार्यक्रम के स्थानीय आयोजक थे – आंध्रप्रदेश विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी परिषद्। प्रो. नायडू, सदस्य–सचिव, आंध्र प्रदेश, विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी ने भी कार्यक्रम में भाग लिया।

ऐसा ही कार्यक्रम पश्चिमी क्षेत्र के लिए मुंबई में 1 ओर 2 अप्रैल 2004 को आयोजित किया गया था जिसमें गुजरात, महाराष्ट्र, राजस्थान, मध्यप्रदेश, सिलवासा और दादर एवं नागरहवेली से आए करीब बयालीस लोगों ने भाग लिया। यह कार्यक्रम महाराष्ट्र सरकार के विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विभाग के साथ मिलकर नेहरू साइंस सेन्टर, मुंबई में आयोजित किया गया था। कार्यक्रम का उद्घाटन विज्ञान प्रसार के अध्यक्ष श्री एम.वी. कामथ ने किया। इस अवसर पर उद्घाटन भाषण सुप्रसिद्ध खगोल भौतिकविद् प्रो. एस. एम. चित्रे ने दिया। उद्घाटन सत्र में श्री खुल्लर, सचिव (वि.प्रौ.) महाराष्ट्र सरकार, श्री रौतेला, निदेशक नेहरू साइंस सेन्टर, और डॉ. ए.वी. सप्रे, विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी परिषद् महाराष्ट्र सरकार उपस्थित थे। श्री अनुज सिन्हा, अध्यक्ष, राविप्रौसंप समापन सत्र में उपस्थित थे।

इन दोनों कार्यक्रमों में भाग लेने वालों को पांच संसाधन–लेख, शुक्र पारगमन गतिविधि किट और शुक्र पारगमन के विभिन्न पहलुओं से संबंधित छह स्लाइड–शो वाली एक सी–डी – संसाधन सामग्री दी गई।

विज्ञान रेल - यात्रा पर

मार्च 2004 में विज्ञान रेल ने पटना, दुर्गापुर, रांची (हटिया की बजाय), हावड़ा, भुवनेश्वर, कटक (अतिरिक्त स्टॉप), विशाखापटनम्, दुर्ग, नागपुर, सिकन्दराबाद और तिरुपति की यात्रा की। पहले की तरह, विज्ञान रेल को भारी संख्या में दर्शकों ने देखा। विशेष रूप से पटना, दुर्गापुर, भुवनेश्वर, विशाखापटनम् और दुर्ग में विज्ञान रेल – पहियों पर विज्ञान प्रदर्शनी देखने के लिए भारी भीड़ इकट्ठा हुई। विज्ञान रेल ने अपनी यात्रा उत्तर, उत्तर पूर्व और पूर्व में पूरी कर ली है और अब उसने दक्षिण के प्रवेश किया है।

विज्ञान रेल विशाखापटनम् में

...वैज्ञानिक ढंग से सोचें, वैज्ञानिक ढंग से करें ... वैज्ञानिक ढंग से सोचें, वैज्ञानिक ढंग से करें ... वैज्ञानिक ढंग से सोचें, वैज्ञानिक...

विज्ञान प्रसार के लिए डॉ. सुबोध महंती द्वारा सी–24, कुतुब इंस्टीट्यूशनल एरिया, नई दिल्ली 110 016 से प्रकाशित तथा उन्हीं की ओर से सौरभ प्रिंटर्स प्रा. लि., बी–280, ओखला इंडस्ट्रीयल एरिया फेस – 1, नई दिल्ली 110 020 द्वारा मुद्रित
सम्पादक : डॉ. विनय बी. काम्बले

छठवीं लहर

भू–वैज्ञानिक इतिहास के पिछले 60 करोड़ वर्षों के इतिहास में पांच बार महाविनाश देखा गया, हालांकि यह लाखों वर्षों के अंतराल में हुआ। पुराजीवी महाकल्प (59 से 24.8 करोड़ वर्ष पहले) के दौरान तीन बार महाविनाश देखा गया – 50.5 से 43.8 करोड़ वर्ष पहले (आर्डोविसियन काल) 40.8 से 36 करोड़ वर्ष पहले (डेवोनियन काल) और 28.6 से 24.8 करोड़ वर्ष पहले (पर्मियन काल)। इन युगों के दौरान ही मछलियों, उभयचर प्राणी तथा कई अकशेरुकी और कशेरुकी समूह के प्राणियों का विकास और विनाश हुआ। इस युग के दौरान ही वनों का निर्माण हुआ। विशेष रूप से, पर्मियन काल के दौरान जलवायु काफी सूखा और गर्म था, जिसके कारण कई समुद्री जानवरों का विनाश हुआ और सरीसृप वर्ग का उद्भव हुआ। महाविनाश के अगले दो चरण मध्यजीवी महाकल्प (24.8 से 6.5 करोड़ वर्ष पहले) के दौरान हुए – 24.8 से 21.3 करोड़ वर्ष पहले (ट्राइएसिक काल) और 14.4 से 6.5 करोड़ वर्ष पहले (क्रीटैसियस काल – जुरासिक और टर्शियरी काल के मध्य का समय)। इस काल के दौरान ही डायनासोर बहुतायत में पाये जाने लगे। इस दौरान जलवायु काफी गर्म थी और समुद्री जल स्तर में वृद्धि हो गयी थी। इस काल के दौरान ही सबसे पहले फूल वाले पौधों का उद्भव हुआ। डायनासोर की बहुतायतता जारी रही लेकिन क्रिटेसियस काल के अंत तक वे सब मर गये। कहा जाता है कि एक या कई उल्का पिंडों के विनाशकारी प्रभाव के कारण ऐसा हुआ। संभव है कि जलवायु में भारी परिवर्तन भी उस समय के अधिकांश जीव–जंतुओं और डायनासोर के विनाश के लिए उत्तरदायी रहा। वास्तव में व्यापक विनाश के पांच चरणों के संभावित कारण प्राकृतिक थे – भूमंडलीय तापन और शीतलन, विनाशक उल्कापिंड, ज्वालामुखीय गतिविधियां आदि।

हालांकि, कुछ प्रजातियों का विलुप्त होना – जिसे किसी प्रजाति का विलोपन भी कहा जाता है – और दूसरे का उद्भव एक प्राकृतिक प्रक्रिया है जो जैव विकास का आधार होती है। जीवाश्मों के रिकॉर्ड के अनुसार अभी तक कोई भी प्रजाति ऐसी नहीं मिली है जो अमर हो। सबसे रोचक तथ्य यह है कि पृथ्वी पर अस्तित्व में आ चुकी प्रजातियों में से अब तक सिर्फ 2 से 4 प्रतिशत प्रजातियां ही बची हैं। शेष प्रजातियों का विनाश हो गया – अधिकांश प्रजातियां मनुष्य के अस्तित्व में आने के काफी पहले ही विलुप्त हो चुकी हैं।

साइंस जरनल के हाल के एक अंक में ब्रिटेन में पक्षियों, तितलियों और संवहनी पौधों के विलुप्तीकरण पर एक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। यह अध्ययन पिछले 20 से 40 वर्षों में इंग्लैंड, वेल्स और स्कॉटलैंड में इकट्ठा किये गये आंकड़ों के बड़े सेट पर आधारित था तथा इसे ब्रिटेन के डॉरचेस्टर स्थित नेचुरल एनवायनरमेंट रिसर्च कौंसिल सेंटर फॉर इकोलॉजी एण्ड हाइड्रोलॉजी में विश्लेषित किया गया। यदि इसके परिणामों पर विश्वास किया जाय तो जीवन के इतिहास में महाविनाश का एक छठा चरण आने वाला है। इस अध्ययन से पता चलता है कि देशज पौधों में 28 प्रतिशत, देशज पक्षियों में 54 प्रतिशत और तितलियों में 71 प्रतिशत कमी देखी गयी। तदुपरांत, इस बात के ठोस प्रमाण हैं कि पक्षियों से भी अधिक तेजी से कीट विलुप्त हो रहे हैं, जबकि पृथ्वी पर पायी जाने वाली प्रजातियों में से आधे से अधिक हिस्सा इनका ही होता है। इससे इस बात को बल मिलता है कि दुनिया वास्तव में प्रजातियों के एक और महाविनाश के मुहाने पर खड़ी है।

एक प्रजाति में हर चार वर्ष पर होने वाली कमी के अध्ययन से यह पता चलता है कि पृथ्वी पर पाये जाने वाले जंतुओं और वनस्पतियों में जो कमी आज हम देख रहे हैं वह पिछले या संभावित प्राकृतिक विनाश दर से एक हजार से दस हजार गुना अधिक है। ऐसा क्यों है? पक्षियों, तितलियों और पौधों के अस्वाभाविक विनाश की दर का क्या कारण हो सकता है? कुछ सूक्ष्म लेकिन व्यापक संभावित कारण जैसे पर्यावास में कमी और मानव गतिविधियां हो सकती हैं। ओजोन परत में क्षरण और हरित गृह (ग्रीन हाउस) प्रभाव, वनों का विनाश और मृदा एवं जल प्रदूषण भी इसके लिए उत्तरदायी हो सकते हैं। जल एवं वन जैसे संसाधनों का अतिशय दोहन, कृषि गतिविधियां, निष्कर्षण (खनन, मत्स्यग्रहण, वृक्षों की कटाई, खेती इत्यादि) और विकास (मानव बस्तियां, उद्योग और इनसे संबंधित अधोसंरचनाएं) का विपरीत प्रभाव पड़ता है। पर्यावास में कमी और विखंडन से अलग–अलग, छोटी, बिखरी हुई जनसंख्या की स्थापना को बढ़ावा मिलता है। इस प्रकार की छोटी जनसंख्या में अंतःप्रजनन, उच्च शिशु मृत्युदर की अधिक संभावना होती है जिसके परिणामस्वरूप किसी प्रजाति का विलोपन हो जाता है। भू–वैज्ञानिक इतिहास में अब तक हो चुकी महाविनाश की पांच घटनाओं के विपरीत छठवें विनाश के संकट के लिए पूरी तरह मनुष्य प्रजाति ही जिम्मेदार प्रतीत हो रही है।

समूचे विश्व की जंतु प्रजातियों में से 7.31 प्रतिशत जंतु भारत में रहते हैं और पूरे विश्व की 10.78 प्रतिशत वनस्पति प्रजातियां भारत में है। देश में रिकार्ड की गयीं कुल वनस्पतियों में से लगभग 33 प्रतिशत प्रजातियां मुख्य रूप से उत्तर–पूर्व, पश्चिमी घाट, उत्तर–पश्चिम हिमालय और अंडमान एवं निकोबार द्वीप समूह में केंद्रित हैं। लेकिन पर्यावास के विनाश, क्षरण, विखंडन और संसाधनों के अतिशय दोहन के कारण भारत की समृद्ध जैव–विविधता पर गंभीर खतरा मंडरा रहा है। इंटरनेशनल यूनियन फॉर कंजर्वेशन ऑफ नेचर द्वारा वर्ष 2000 में प्रकाशित संकट प्रायः जानवरों की लाल सूची में भारत की 44 वनस्पति प्रजातियों पर गंभीर रूप से संकटापन्न, 113 को संकटापन्न और 87 पर संकट की संभावना घोषित किया गया है। इसी प्रकार जानवरों में 18 गंभीर रूप से संकटापन्न, 54 संकटापन्न और 143 पर संकट की संभावना घोषित किया गया है।

शेष पृष्ठ... 18 पर जारी

सम्पादक : विनय बी. काम्बले
पत्र व्यवहार के लिए पता : **विज्ञान प्रसार** सी–24 कुतुब इंस्टीट्यूशनल एरिया, नई दिल्ली–110016
दूरभाष : 26967532, फैक्स : 26965986
ई–मेल : *vigyan@hub.nic.in*
वेबसाइट : *http://www.vigyanprasar.com*

"ड्रीम 2047" में प्रकाशित लेखों/प्रलेखों में व्यक्त लेखकों के कथनों, मतों व सुझावों के लिए विज्ञान प्रसार किसी भी रूप मे उत्तरदायी नहीं है।

"ड्रीम 2047" मे प्रकाशित लेखों के अंश, सौजन्य/साभार के साथ पुनर्प्रकाशित/उद्धृत किये जा सकते हैं।

नेत्र, दृष्टि और शुक्र पारगमन

☐ विनय बी. काम्बले

ई–मेल : vbkamble@alpha.nic.in

08 जून, 2004 को शुक्र का पारगमन होगा और इसे पूरे देश में देखा जा सकेगा। बुध का पारगमन तुलनात्मक रूप से अधिक, एक शताब्दी में 13–14 बार होता है जबकि शुक्र का पारगमन काफी कम होता है। शुक्र का आगामी पारगमन लगभग 121 वर्ष के अंतराल पर हो रहा है। निश्चित रूप से इसे देखना एक महान् अवसर होगा। यह सच है कि कई वेबसाइट पर समूचे पारगमन का सीधा प्रसारण किया जाएगा और अपने कंप्यूटर के मॉनीटर के सामने बैठना, इस पारगमन के निरीक्षण का सबसे सुरक्षित तरीका होगा। लेकिन शुक्र के पारगमन को सीधे देखने के लिए पर्याप्त सुरक्षा उपाय करने होंगे ताकि हमारी आंखों को स्थायी या अस्थायी नुकसान न हो। सुरक्षित फिल्टर के बगैर सूर्य की तरफ देखना बिल्कुल सुरक्षित नहीं होगा। केवल पूर्ण सूर्यग्रहण के दौरान और वह भी पूर्णता के चरण के दौरान सूर्य की तरफ सीधे देखना सुरक्षित होता है।

इस लेख में, हम सूर्य को अथवा आंशिक ग्रहण के समय सूर्य को देखने से नंगी आँखों को होने वाली क्षति और इसे रोकने के उपायों की संक्षिप्त समीक्षा करेंगे। इसके लिए हमें नेत्र की संरचना और इसे प्रभावित करने वाले प्रकाश विकिरण को समझना होगा। उसके बाद हम सुरक्षात्मक उपाय किए बिना अथवा धुंधले शीशे और धूप चश्मे आदि जैसे असुरक्षित उपकरणों से सूर्य को देखने के कारण आँखों को होने वाली क्षति, सूर्य को सुरक्षात्मक ढंग से देखने के उपाय इत्यादि पर विचार करेंगे।

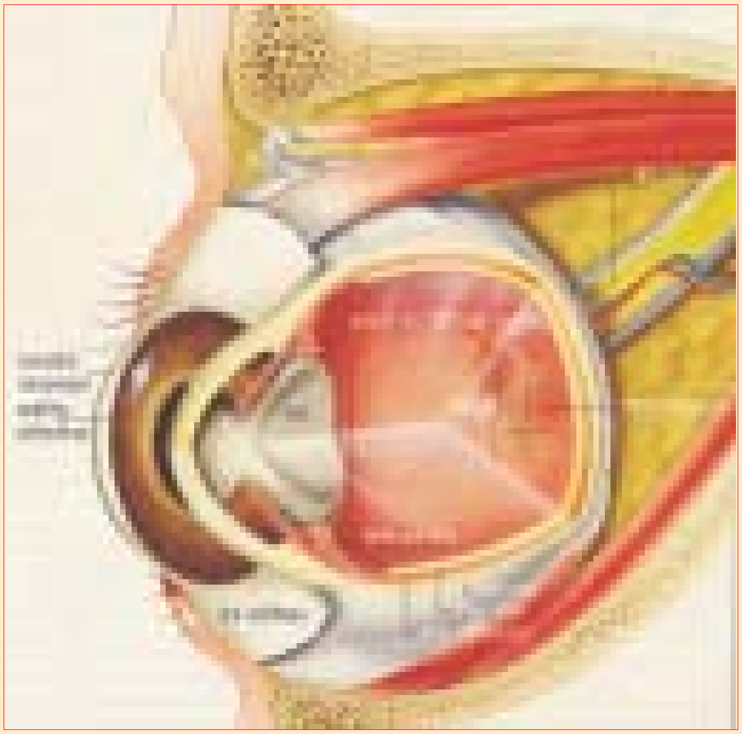

चित्र 1 : नेत्र की संरचना

नेत्र की संरचना

वास्तविकता यह है कि आँख किसी वस्तु को नहीं, बल्कि उससे प्रत्यावर्तित या उत्सर्जित प्रकाश को देखती है। यह किसी वस्तु को कम प्रकाश में तो देख सकती है पर उसे प्रकाश के पूर्ण अभाव की स्थिति में नहीं देख सकती। प्रकाश किरणें आँख में पारदर्शी ऊतकों के माध्यम से प्रवेश करती हैं। इन्हें आँख विद्युत संकेतों में बदल देती है। ये संकेत मस्तिष्क में भेजे जाते हैं। वह इन्हें दृश्यमान प्रतिबिंबों में बदल देता है।

नेत्र गोलक (आई बॉल) के दिखाई देनेवाले हिस्से में श्वेतपटल (स्क्लीअरा) और रंगीन आइरिस (परितारिका) होती है : (चित्र 1)। पारदर्शक स्वच्छमंडल (कोर्निआ) पर एक झिल्ली (कंजंक्टिवा) चढ़ी होती है इसे नेत्र श्लेष्मिका कहते हैं। आँख के सफेद हिस्से को श्वेत पटल (स्क्लीअरा) कहते हैं। आइरिस के ठीक आगे पारदर्शक स्वच्छ मंडल होता है। आँख के लेंस का संबंध सिलिअरी पिंड से होता है। नेत्र गोलक के अंदर जेली की तरह का एक द्रव पारदर्शक (विट्रिअस ह्युमर) होता है। आँख में स्थित रेटिना (दृष्टिपटल) प्रकाश किरणों को विद्युत संकेतों में बदल देता है। यह कोरायड यानी रंजित पटल के नीचे स्थित होता है। नेत्र तंतु (आप्टिक नर्व) विद्युत संकेतों को मस्तिष्क तक पहुँचाते है। मैक्यूला ल्यूटिआ (इसके बारे में आगे बताया गया है) में स्थित एक गड्ढे को फोविआ सेंट्रालिस कहते हैं। यह सबसे तीव्र दृष्टि वाला क्षेत्र है।

आईरिस आँख में स्थित रंगीन चकती होती है जो पारदर्शक स्वच्छमंडल के पीछे होती है। आईरिस के मध्य में एक वृत्ताकार द्वार होता है जिसे पुतली कहते हैं (चित्र–2)। यह एक काले वृत्त के आकार की दिखती है। पुतली नेत्र में प्रवेश करने वाले प्रकाश की मात्रा को नियंत्रित करती है। पुतली से जुड़ी हुई दो पेशियां पुतली का आकार प्रकाश की मात्रा के अनुसार खुद ब खुद घटा–बढ़ा देती है। मंद प्रकाश में विस्तारक पेशी पुतली का आकार फैला देती है। इससे अधिकाधिक प्रकाश नेत्र में प्रवेश कर पाता है। तीव्र प्रकाश में संकुचन पेशी इसे सिकोड़ देती है। इससे नेत्र में अत्यधिक प्रकाश प्रवेश नहीं कर पाता। आँख जब किसी निकट वस्तु को देखती है, तब भी पुतली सिकुड़ जाती है। इससे उस वस्तु का नेत्र में काफी स्पष्ट बिंब बनता है।

सिलिअरी पिंड आईरिस को घेरे रहते हैं। यह मजबूत तंतुओं के जरिए क्रिस्टलीय लेंस से जुड़ी होती है। यह आईरिस के ठीक पीछे स्थित होता है। लेंस की संरचना में लचीलापन होता है। इसकी आकृति और आकार एस्पीरिन की गोली के आकार की होती है। पारदर्शक स्वच्छमंडल की ही तरह लेंस भी पारदर्शी होता है इसमें कोई रक्त नलिका नहीं होती और वह नेत्र के अन्य अवयवों की तुलना में जलरहित होता है। सिलिअरी पिंड की पेशियां लेंस के आकार को लगातार घटाती–बढ़ाती रहती हैं। जरूरत के मुताबिक लेंस का आकार जब–जब बदलता है, तब–तब एक स्पष्ट दृश्यमान बिंब उभरता है। दरअसल, नजदीक और दूर की वस्तुओं को देखने के लिए आँख का फोकस बिंदु बदलता रहता है। इसलिए लेंस का आकार भी बदलता रहता है। सिलिअरी बॉडी से स्वच्छ जलीय द्रव भी निकलता रहता है। इसे ऐक्विअस ह्युमर कहते हैं। यह पारदर्शक स्वच्छमंडल और लेंस को पोषक तत्व प्रदान करता है। साथ ही उन्हें चिकना भी बनाए रखता है। पारदर्शक स्वच्छमंडल और लेंस के बीच यही द्रव भरा रहता है। सिलिअरी बॉडी इस द्रव का निर्माण लगातार करती रहती है। पुराना द्रव किनारे बनी निकास नलियों से बाहर चला जाता है और उसका स्थान नया द्रव ले लेता है।

रंजित पटल (कोरायड) यूवीअल क्षेत्र के पिछले हिस्से में स्थित होता है। यहाँ यह समझ लेना चाहिए कि आईरिस, सिलिअरी तंतु पेशियों और रंजित

पटल को एक ही संरचना (युविअल क्षेत्र) माना जाता है। रंजित पटल देखने पर काली स्याही में भीगा हुआ सोख्ता (ब्लाटिंग पेपर) जैसा लगता है। उसमें अनेक रक्त नलिकाएं होती हैं। रंजित पटल के रक्त से ही रेटिना के ऊपरी भाग का पोषण होता है।

रेटिना नेत्रगोलक की दीवार की सबसे अंदरुनी परत का निर्माण करता है। यह गीले टिस्यु पेपर के टुकड़े की तरह की झीनी सी संरचना होती हैं। प्रकाश संवेदी कोशिकाएं दो प्रकार की होती हैं। कुछ कोशिकाएं शलाकाओं (राड) के आकार की होती हैं और कुछ अन्य कोशिकाएं शंकु (कोन) के आकार की होती हैं। रेटिना में 12 करोड़ शलाकाएं एवं 60 लाख शंकु होते हैं। ये कोशिकाएं प्रकाश को अवशोषित कर उसे विद्युत संकेतों में बदल देती हैं (चित्र 3)।

रेटिना के केन्द्र के पास एक गोल सा क्षेत्र होता है। इसे मैक्युला लुटिया अथवा मैक्युला कहते हैं। मैक्युला मुख्यतः शंकुओं से बना होता है। **आँख जिन दृश्यों पर सीधे टिकी होती है, मैक्युला उनका अत्यंत स्पष्ट बिंब, विशेषकर तीव्र प्रकाश में निर्मित करता है।** रेटिना का बाकी हिस्सा परिधीय दृष्टि का निर्माण करता है। आशय यह है कि आँख जब किसी वस्तु पर सीधे टिकी होती है, तो यह हिस्सा उसे वस्तु के किनारों को देखने में सक्षम बनाता है। अधिकतर शलाकाएं रेटिना के इसी हिस्से में होती हैं। ये कम प्रकाश के प्रति अधिक संवेदनशील होती हैं। इसलिए आँख जब धुंधली दिखनेवाली वस्तुओं पर सीधे नहीं टिकी होतीं, तो वे अक्सर अधिक स्पष्ट दिखाई देती हैं। उदाहरण के तौर पर यदि किसी धुंधले तारे को किनारे की ओर देखा जाए तो उसका बिंब रेटिना के उस हिस्से में बनता है, जिसमें अधिकतर शलाकाएं होती हैं। इसलिए मद्धिम प्रकाश में भी उनकी सबसे अच्छी छवि बनती है।

शलाकाओं और शंकुओं से जुड़े तंत्रिका तंतु रेटिना के केन्द्र पर मिलते हैं और नेत्र तंतु (आप्टिक नर्व) का निर्माण करते हैं। इस नेत्र तंतु में लाखों तंत्रिकाएं होती हैं। यह एक लचीले तार का काम करती है और नेत्र गोलक को मस्तिष्क से जोड़ती है। वास्तव में नेत्र तंतु रेटिना में उत्पन्न विद्युत् संकेतों को मस्तिष्क तक पहुँचाते हैं जहां उनका दृश्य बिंब बनता है।

पुतली के चारों ओर एक गोलाकार आकृति होती है। इसे आईरिस कहते हैं। यह आँख में प्रवेश करने वाले प्रकाश की मात्रा को नियंत्रित करती है। मंद प्रकाश में विस्तारक पेशियां पुतली को फैला देती हैं। तीव्र प्रकाश में संकुचन पेशियां पुतली के चारों ओर कस जाती हैं और उसे संकुचित कर देती हैं।

चित्र 2. आईरिस

हम कैसे देखते हैं?

आंख में प्रवेश करने वाली किरणें रेटिना पर एक निश्चित बिंदु पर पड़नी चाहिए। ऐसा होने पर ही किसी वस्तु का रेटिना पर स्पष्ट बिंब बनता है। लेकिन किसी वस्तु से प्रत्यावर्तित या उत्सर्जित होने वाली प्रकाश किरणें एक–दूसरे से दूर या तो एक दूसरे के लगभग समानांतर चलती हैं। पारदर्शक स्वच्छ मंडल (कॉर्निया) और लेंस उन्हें एक फोकस बिंदु पर केन्द्रित करते हैं। ये प्रकाश किरणों को एक–दूसरे की ओर मोड़ते हैं। पारदर्शक स्वच्छ मंडल से गुजरने के बाद प्रकाश किरणें ऐक्विअस ह्युमर और पुतली से होती हुई लेंस में प्रवेश करती हैं। लेंस उन्हें मोड़कर एक–दूसरे के निकट लाता है। फिर प्रकाश की किरणें काचाभ द्रव (विट्रिअस ह्युमर) से होती हुई रेटिना से टकराती हैं। **जिन वस्तुओं पर आँखें टिकी होती हैं, उनसे आने वाली प्रकाश किरणें एक साथ फोविया सेंट्रालिस पर पड़ती हैं।** यह मैक्युला के केन्द्र में स्थित एक गड्ढेदार स्थान है (चित्र 3)। यह सर्वाधिक तीव्र दृष्टिवाला क्षेत्र होता है। वस्तुओं के किनारों से आने वाली प्रकाश किरणें रेटिना के अन्य क्षेत्रों पर पड़ती हैं।

आँख की पुतली एक हद तक नेत्र का प्रकाश एवं अंधकार से सामंजस्य कायम करती है। तेज रोशनी में यह सिकुड़ कर सुई की नोक जितनी छोटी बन सकती है। इस तरह वह अत्यधिक तीव्र प्रकाश के कारण नेत्र को क्षतिग्रस्त होने अथवा चौंधियाने से बचाती है। अंधेरे में यह पूरी आईरिस जितनी फैल सकती है। इस प्रकार वह आँख में प्रकाश की यथासंभव मात्रा को प्रवेश करने देती है। लेकिन अंधकार एवं प्रकाश से नेत्र को अनुकूलित करने का सबसे महत्वपूर्ण कार्य रेटिना में ही होता है।

विद्युत्-चुंबकीय वर्णक्रम में महत्वपूर्ण प्रकाशीय क्षेत्र

विकिरण के विविध स्रोतों से विद्युत्–चुंबकीय वर्णक्रम के विभिन्न भागों में विद्युत–चुंबकीय ऊर्जा उत्सर्जित होती है। इस वर्णक्रम में रेडियो आवृत्ति, अवरक्त किरणें, दृश्य अथवा प्रकाश किरणें, पराबैंगनी किरणें तथा एक्स एवं गामा

रेटिना में अवस्थित कोशिकाओं को शलाका और शंकु कहते हैं। ये प्रकाश को अवशोषित करती हैं और उन्हें विद्युत संकेतों में बदल देती हैं। रेटिना के केंद्रीय भाग में शलाकाओं से अधिक शंकु होते हैं। शंकु मुख्यतया फोविया सेंट्रालिस क्षेत्र में केन्द्रित होते हैं। शलाकाओं और शंकुओं से जुड़े तंत्रिका तंतु मिलकर नेत्र तंतु (आप्टिक नर्व) का निर्माण करते हैं।

चित्र 3 रेटिना

किरणें शामिल होती हैं। प्रकाश के तरंग दैर्घ्य की इकाई नैनोमीटर (nm) होती है (1 nm = 10^{-9} मीटर)। चित्र में विद्युत् चुम्बकीय वर्णक्रम को वर्गीकृत रुप में प्रस्तुत किया गया है (चित्र 4)।

पृथ्वी पर सूर्य के वर्णक्रम का जो भाग पहुँचता है, उसमें मुख्यत: अवरक्त किरणें (6500 nm से – 723 nm तक), दृश्य किरणें (723nm से – 399nm तक), और पराबैंगनी किरणें (397nm से – 300nm तक) होती हैं। यह जानना दिलचस्प होगा कि **सूर्य के प्रकाश में 58 प्रतिशत अवरक्त, 40 प्रतिशत दृश्य एवं 2 प्रतिशत पराबैंगनी किरणें होती हैं।**

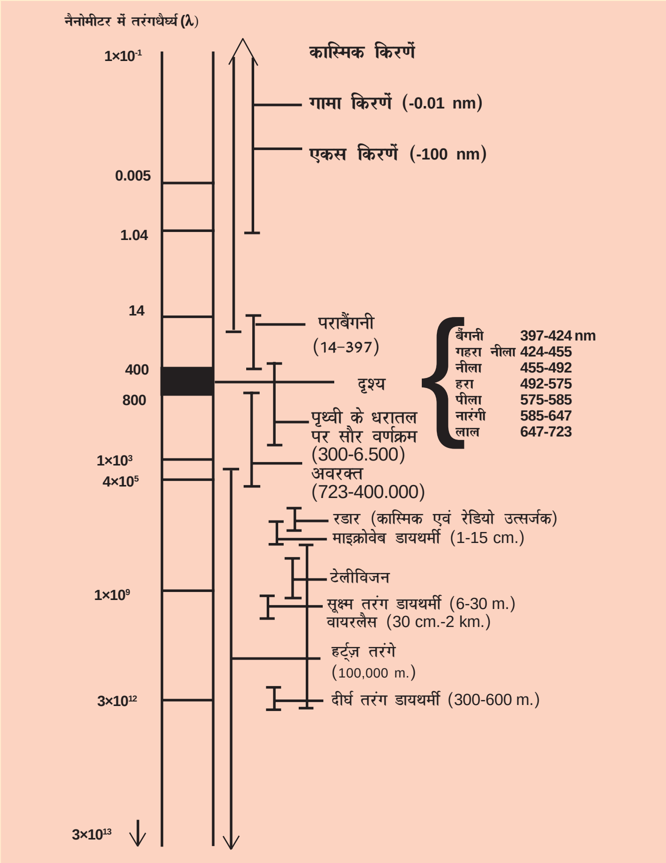

चित्र 4 : विद्युत्–चुम्बकीय वर्णक्रम

3000 nm से 393 nm तक के प्रकाशीय क्षेत्र में अवरक्त, दृश्य तथा दीर्घ पराबैंगनी किरणें होती हैं। विद्युत् चुंबकीय वर्णकम के लघुतम तरंग दैर्घ्य वाले क्षेत्र में किरणें 1nm से भी कम तरंग दैर्घ्य वाली होती हैं। यह दोनों क्षेत्र महत्वपूर्ण प्रकाशीय क्षेत्र हैं। इन्हें चित्र 5 में क्रमबद्ध ढंग से दिखाया गया है।

नेत्र के विभिन्न भागों से प्रकाश का संचरण

शरीर के अन्य ऊतकों की ही तरह नेत्र ऊतक भी विद्युत् चुम्बकीय वर्णक्रम की दीर्घतम किरणों के लिए पारदर्शी होते हैं। लेकिन शरीर के अन्य ऊतकों की भांति वे दीर्घ अवरक्त विकिरण के लिए अपारदर्शी होते हैं। ये किरणें जल द्वारा आसानी से अवशोषित कर ली जाती हैं। इस प्रकार आँख के पारदर्शक स्वच्छमंडल (कोर्निया) की बाहरी पर्त इन किरणों को सोख लेती है। लेकिन 3000 nm से कम तरंग–दैर्घ्य वाली लघु अवरक्त किरणों के लिए भी ये पारदर्शी सिद्ध होते हैं। वर्णक्रम के पूरे मध्यवर्ती भाग में अवशोषण और प्रसारण की मात्रा अलग अलग तरंग दैर्घ्य की किरणों के लिए अलग अलग होती हैं। यह स्थिति दीर्घ पराबैंगनी किरणों का क्षेत्र आने तक बनी रहती है। उसके बाद 393 nm से कम के सभी विकिरण पारदर्शक स्वच्छमंडल द्वारा पुन: रोक लिए जाते हैं। लघु एवं चरम पराबैंगनी किरणों की पट्टी के क्षेत्र में शामिल अधिकांश विकिरण जल एवं कुछ विकिरण वायु द्वारा अवशोषित कर लिया जाता है। यह स्थिति 1.0 nm वाली अतिवेधी व अल्पवेधी X तथा गामा किरणों की पट्टी तक

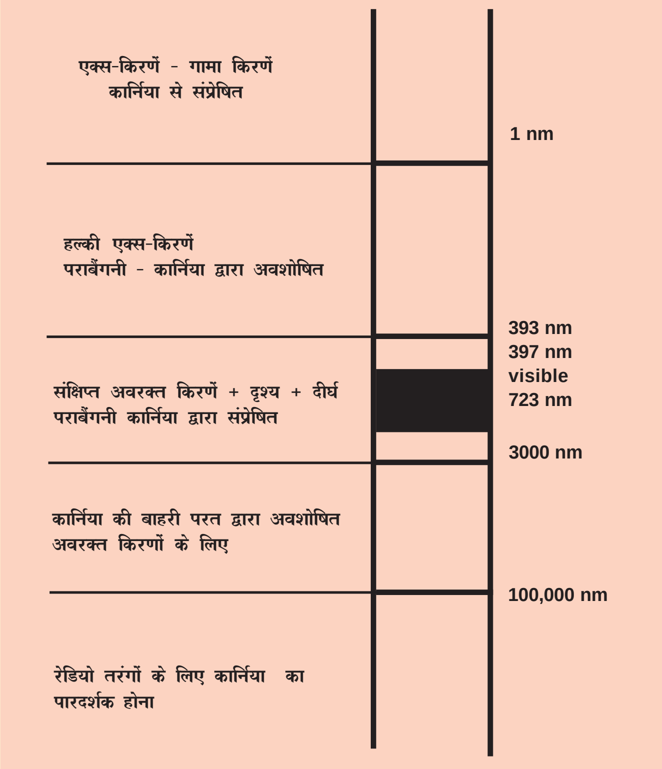

चित्र 5 : विद्युत्–चुम्बकीय वर्णक्रम के महत्वपूर्ण प्रकाशीय क्षेत्र

बनी रहती है। इस तरह वर्णक्रम के मध्य एवं लघुतम तरंग दैर्घ्यवाले दोनों क्षेत्र जैव वैज्ञानिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं।

नेत्र के विभिन्न भाग–स्वच्छ द्रव, लेंस, विट्रिअस और रेटिना–प्रकाश की विभिन्न तरंग–दैर्घ्यवाली किरणों की भिन्न–भिन्न मात्राओं का प्रसारण करते हैं (चित्र 6)।

3,000 nm से कम तरंग–दैर्घ्य वाली अवरक्त किरणों की काफी मात्रा पारदर्शक स्वच्छ मंडल(कोर्निया) द्वारा प्रसारित की जाती है। लेकिन 1400 nm से 2,000 nm के समीप कोर्निया अपारदर्शी होता है। इस तरंग–दैर्घ्यवाली किरणों के लिए इसके ऊतक अपेक्षाकृत अधिक अभेद्य होते हैं। लेकिन 2,300nm तरंग–दैर्घ्यवाली 25% आपतित किरणें इनसे होकर गुजर जाती हैं। 1650 nm वाली 65%, 1200 nm वाली 80 % और 1000 nm वाली शत प्रतिशत किरणें इन्हें पार कर जाती है। इस तरंग–दैर्घ्य वाली लघु अवरक्त किरणों के लिए पारदर्शक स्वच्छमंडल दृश्य लाल किरणों (750 nm) की तुलना में अधिक पारदर्शी होता है। वैसे स्वच्छ मंडल अधिकांश दृश्य विकिरण के लिए पारगम्य होता है। इस स्थिति में पुन: बदलाव तब आता है जब दीर्घ पराबैंगनी किरणों का क्षेत्र शुरू होता है। पारदर्शक स्वच्छमंडल 370nm के 90%, 330 nm के 80%, 305 nm के 50%, 300 nm के 25% और 290 nm के 2% आपतित विकिरण का नेत्र के आंतरिक भाग में प्रसारण करता है। उस विकिरण के बड़े भाग को स्वच्छ द्रव(ऐक्विअस ह्युमर) अवशोषित कर लेता है। इस वर्णक्रम पट्टी के शेष 98% भाग का आधा हिस्सा पारदर्शक स्वच्छमंडल की उपकला (एपीथिलियम) और आधे भाग को पीठिका (स्ट्रोमा) अवशोषित कर लेती है। 230 nm वाले लगभग समस्त आपतित विकिरण (97.3%) को उपकला अवशोषण कर लेती है।

पारदर्शक स्वच्छमंडल से गुजर जाने वाले विकिरण के एक अंश को नेत्र ऊतक अवशोषित कर लेते हैं। लगभग 10 प्रतिशत विकिरण इधर–उधर

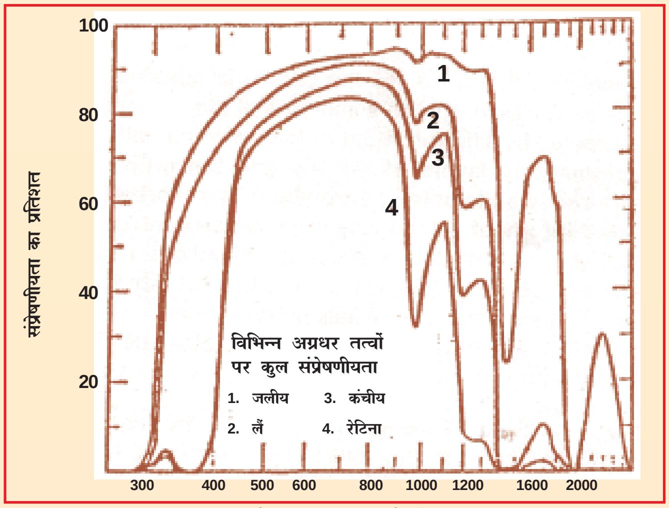

नैनोमीटर में तरंगदैर्घ्य
चित्र 6 : सीधा तथा प्रकीर्ण प्रकाश आंख के विविध अंगों से कैसे गुजरता है

फैलकर निष्प्रभावी हो जाता है। **आईरिस की रंगमय पर्त और रेटिना के सम्पर्क में चाहे अवरक्त किरणें आएं, अथवा दृश्य एवं दीर्घ पराबैंगनी किरणें आएं, इस समस्त विकिरण का अधिकांश भाग अवशोषित होकर ताप में परिवर्तित हो जाता है।** पारदर्शक माध्यम से गुजरने वाले दीर्घ तरंग–दैर्घ्य वाले विकिरण में 2700 nm से ऊपर के क्षेत्र की अवरक्त किरणों को स्वच्छ द्रव अवशोषित कर लेता है। इससे कम तरंग–दैर्घ्यवाले विकिरण को भी यह अंशतः अवशोषित कर लेता है। उधर लेंस 2300 nm से अधिक तरंग–दैर्घ्य वाले समस्त विकिरण को अवशोषित कर लेता है, लेकिन उससे कम तरंग–दैर्घ्य वाले विकिरण के बारे में इसमें चयन की प्रवृत्ति दिखाई देती है। यह 1900 nm और 1500 nm की वर्णक्रम पट्टी के ही अवशोषण का रुझान प्रदर्शित करता है।

वर्णक्रम के दृश्य भाग की कम तरंग–दैर्घ्यवाली किरणों का अवशोषण करने में लेंस के ऊतक सबसे सक्रिय होते हैं। लेंस को कितने कम तरंग–दैर्घ्य तक की किरण पार कर सकती है, यह व्यक्ति की आयु पर निर्भर होता है। शिशुओं में 305.5 nm तक की पराबैंगनी किरणें लेंस के ऊतकों से गुजर जाती है। वयस्कों में 400 से 350 nm के दायरे में आने वाली किरणें अंशतः अवशोषित हो जाती हैं। वैसे उनमें 320 nm तरंग–दैर्घ्य तक का थोड़ा–बहुत विकिरण लेंस को पार कर जाता है। अधिक आयु के लोगों में 450 nm से नीचे की सभी बैंगनी किरणें अवशोषित हो जाती हैं।

विकिरण ऊर्जा का नेत्र में संकेंद्रण

विकिरण ऊर्जा का नेत्र पर क्या प्रभाव पड़ता है, इसके अध्ययन के लिहाज से नेत्र में इसके संकेन्द्रण को समझना अत्यंत आवश्यक है। वर्णक्रम की दीर्घतम (रेडियों तरंगें) और लघुतम तरंग–दैर्घ्य वाली किरणें (X और गामा किरणें) नेत्र ऊतकों में बिना किसी विचलन के प्रवेश कर जाती हैं। परंतु अवरक्त, दृश्य और पराबैंगनी क्षेत्रों की किरणें जब माध्यम में प्रवेश करती हैं, तो उनका अपवर्तन होता है। यह अपवर्तन किस सीमा तक होगा, यह इस पर निर्भर करता है कि माध्यम के ऊतक का प्रकाशीय घनत्व एवं संबंधित किरण का तरंग–दैर्घ्य कितना है। लघु तरंग–दैर्घ्य वाली बैंगनी किरणों का सर्वाधिक अपवर्तन होता है। दृश्य वर्णक्रम के लाल छोर एवं अवरक्त किरणों के क्षेत्र की ओर बढ़ने पर अपवर्तन की प्रवृत्ति घटती जाती है। चित्र 7 में यह स्थिति क्रमबद्ध ढंग से दर्शाई गई है।

यदि किसी लघु स्रोत से मध्यवर्ती वर्णक्रम का उत्सर्जन हो रहा हो, तो नेत्रगोलक के अग्र गोलार्द्ध में ऊर्जा का घनत्व लगभग समान होता है। वजह यह है कि अपवर्तन के कारण होनेवाला ऊर्जा का संकेंद्रण माध्यम में ऊर्जा के अवशोषण और वितरण के

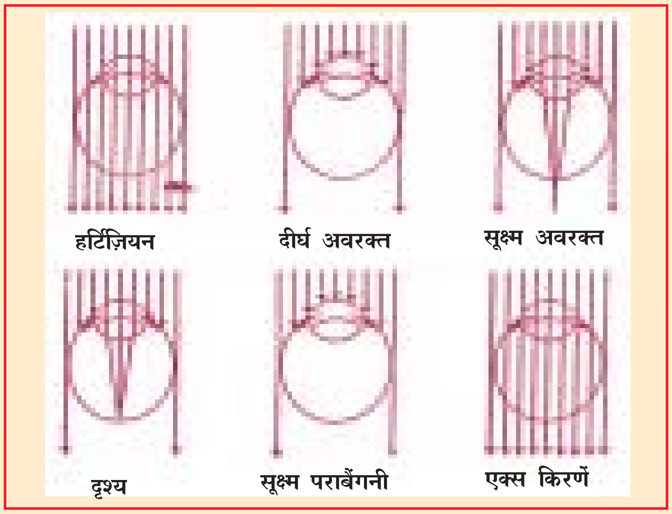

चित्र 7: विद्युत चुम्बकीय वर्णकम के लिए नेत्र की पारगम्यता

कारण निष्प्रभावी हो जाता है, लेकिन नेत्रगोलक के पश्च गोलार्द्ध में किरणें एक बिंदु (फोकस) पर संकेंद्रित हो जाती हैं। अतः नेत्रगोलक के इस भाग में अपवर्तन का प्रभाव काफी महत्वपूर्ण हो जाता है। इस प्रक्रिया के कारण ऊर्जा के एक लघु स्रोत (जो बिंदुवत् हो अथवा जिसका कोणीय व्यास काफी कम हो) की वजह से भी रेटिना क्षतिग्रस्त हो सकता है। खास बात यह है कि नेत्र की बाहरी संरचना अप्रभावित रह सकती है। उदाहरण के तौर पर, सौर अंधता में अवरक्त और दृश्य किरणों के अपवर्तन के कारण यही प्रक्रिया घटित होती है (चित्र 8)। वैसे, नेत्र की प्रकाशीय संरचना के त्रुटिपूर्ण होने पर किरणों का सीमित संकेन्द्रीकरण ही होता है।

पराबैंगनी विकिरण से होने वाला नुकसान

विद्युत् चुम्बकीय वर्णक्रम के उस हिस्से को पराबैंगनी विकिरण (UV) कहते हैं जिनका तरंगदैर्घ्य λ=100-380 nm होता है। पराबैंगनी विकिरण को पुनः UV-C (λ=100-280 nm), UV-B (λ=280-315 nm) तथा UV-A (λ=315-380 nm) में विभाजित किया जाता है।

सामान्य तौर पर तरंगदैर्घ्य जितना ही कम होता है, विकिरण उतना ही ऊर्जा प्रदान करने वाला होता है जिससे यह पौधों व जानवरों को नुकसान पहुंचा सकता है। पराबैंगनी–सी (UV-C) विकिरण से बहुत ज्यादा नुकसान होता है लेकिन सौभाग्य से इसमें पृथ्वी पर जीवन को कोई खतरा नहीं होता। समताप मंडल में यह ऑक्सीजन व ओजोन के द्वारा पूरी तरह छनित हो जाता है। ओजोन पराबैगनी–बी (UV-B) विकिरण को छानने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है जो पृथ्वी पर जीवन के लिए सबसे बड़ा खतरा हे। लेकिन पूर्णरूप से कार्यरत ओजोन परत भी सभी UV-B किरणों को अवशोषित नहीं कर पाता। समताप मंडल (UV-A) विकिरण को व्यवहारतः छन नहीं पाता। लेकिन छोटे तरंगदैर्घ्य की तुलना में (UV-A) विकिरण कम नुकसान पहुंचाता है और मानव शरीर में विटामिन डी को संश्लेषित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इस प्रकार पराबैगनी विकिरण के हानिकारक प्रभावों की चर्चा के दौरान हम मुख्य रूप से UV-B विकिरण की बात करते हैं। इस प्रकार के विकिरण के बहुत ज्यादा संपर्क में रहने पर त्वचा कैंसर, मोतियाबिंद और प्रतिरक्षा तंत्र के दमन को बढ़ावा मिल सकता है। मोतियाबिंद के 20 प्रतिशत मामलों और सभी त्वचा कैंसर के 90 प्रतिशत मामलों के लिए पराबैगनी विकिरण जिम्मेदार होता है। किसी व्यक्ति के जीवन में इसका लगातार संपर्क झुर्रियों को बदतर बनाता है और त्वचा को बदरंग कर देता है जिसके

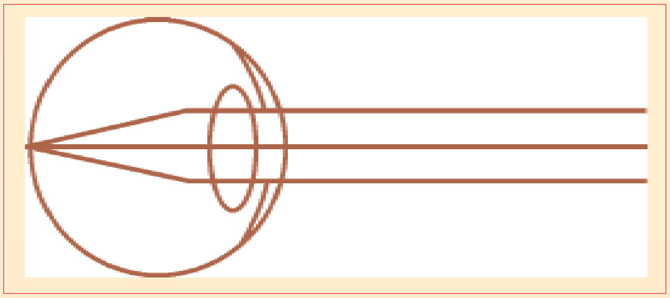

चित्र 8 : विकिरण ऊर्जा का नेत्र में संकेंद्रण

परिणामस्वरूप त्वचा और यकृत पर धब्बे बन जाते हैं।

प्रकाशीय विरिकण आंखों के उन हिस्सों पर गंभीर प्रभाव डालती हैं जिनके द्वारा उनका अवशोषण होता है। कोई भी किरण आंख में कितनी गहराई तक भेदन करती है यह उसके तरंगदैर्घ्य पर निर्भर करता है। भेदन की गहराई का विवरण चित्र 9 में दिया गया है।

यद्यपि यह विभाजन रेखा पर्याप्त रूप से स्पष्ट नहीं है, यह विचार करने पर व्यावहारिक रूप से यथार्थ विभेदन हो सकता है कि कितनी आसानी से नेत्र के विभिन्न घटकों से विभिन्न तरंगदैर्घ्य गुजरते हैं। नेत्र की पारभासकता क्षमता किसी व्यक्ति के आयु पर निर्भर करती है। वृद्धावस्था की तुलना में प्रारंभिक अवस्था में नेत्र के सामने का हिस्सा अधिक पारभासक होता है।

ऐसे स्थानों पर रहना भी हानिकारक होता है जहां आंखों को उच्च तीव्रता के पराबैगनी विकिरण के संपर्क में रहना पड़ता है। उदाहरणस्वरूप – विद्युत् वेल्डिंग के दौरान या साफ आसमान में बनने वाले बर्फीले क्षेत्रों में रहना। पराबैगनी विकिरण के दीर्घकालिक प्रभाव से लेंस पर झाई जम जाती है या एक विशेष झिल्ली का निर्माण होता है। प्रकाश रासायनिक अभिक्रिया द्वारा कई अन्य कारकों

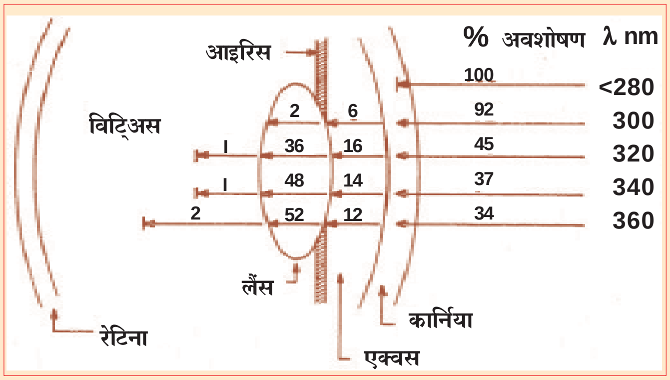

चित्र 9 : पराबैंगनी किरणें आंख में कितनी गहराई तक विभेदन करती हैं

जैसे – डायबिटीज के जुड़ाव से क्रिस्टलाइन कहलाने वाले कुछ प्रोटीन लेंस कोशिकाओं में किसी अन्य रूप में बदल जाते हैं। इससे कोशिकाओं का पिगमेंटेशन हो सकता है और लेंस पर झाई जम सकती है। यह प्रक्रिया काफी लंबे समय तक चलती है जब तक कि दृष्टि काफी हद तक क्षीण नहीं हो जाती और अंधापन आ जाता है। शरीर के अन्य ऊतकों के विपरीत लेंस के ऊतक नई कोशिकाओं का विकास नहीं करते जिसके कारण नुकसान की भरपाई नहीं हो पाती। हालांकि आधुनिक सर्जरी तकनीक के द्वारा झाई युक्त लेंस को हटाकर कृत्रिम लेंस लगाना संभव है। UV-A और UV-B विकिरण इस दशा के लिए जिम्मेदार होता है जिससे नेत्र को नुकसान होता है। इस रोग के लिए उत्तरदायी विकिरण की तीव्रता कॉर्निया या नेत्र के भीतरी झिल्ली में सूजन उत्पन्न करने वाली तीव्रता से काफी कम होती है। सबसे महत्वपूर्ण बात है संपर्क की अवधि कितनी लंबी है – जो अधिकांशत: कई दशकों तक होती है। वास्तव में यह रोग कृत्रिम पराबैगनी विकिरण स्रोत के द्वारा भी हो सकता है। साधारण सूर्य के प्रकाश से भी मोतियाबिंद हो सकता है लेकिन यह प्राय: उन्हीं लोगों को प्रभावित करता है जो काफी समय तक बाहर कार्य करते हैं जैसे – किसान और मछुआरे। व्यावहारिक रूप में इस रोग से कोई भी प्रभावित हो सकता है। सत्तर के करीब आयु वाले लोगों में इस रोग के पाये जाने की संभावना होती हैं लोगों में मोतियाबिंद रोग के पाये जाने की दर आयु बढ़ने के साथ बढ़ती जाती है।

बाक्स 1
एक सामान्य गणना

रेटिना पर उभरने वाले सूर्य के बिंब का आकार यदि 0.2 मिमी. हो, तो रेटिना पर उपलब्ध ऊर्जा का संकेंद्रण 0.1 मिमी. त्रिज्या वाले वृत्त क्षेत्र में होगा।

पृथ्वी पर आपतित सौर ऊर्जा $= 1.36$ किलोवाट/मी^{2}
$= 1.36\times10^{-4}$ किलोवाट/सेमी.^{2}

आँख की पुतली का क्षेत्रफल (1 मिमी. त्रिज्या) $= 0.03$ सेमी.^{2}

आँख की पुतली पर आपतित ऊर्जा $= 1.36\times10^{-4}\times0.03$ किलोवाट
$= 0.040\times10^{-4}$ किलोवाट
$= 4\times10^{-6}$ किलोवाट

इस ऊर्जा का 70 प्रतिशत अंश रेटिना तक पहुँचता है।

अत: रेटिना पर आपतित ऊर्जा $= 4\times0.70\times10^{-6}$ किलोवाट/सेमी.^{2}
$= 3 \times 10^{-6}$ किलोवाट

रेटिना पर सूर्य के बिंब का व्यास 0.2 मिमी. होता है। अत: रेटिना में अवशोषित ऊर्जा का संकेंद्रण क्षेत्र $= 0.03$ मिमी.^{2} $= 0.03\times10^{-2}$ सेमी.^{2} $= 3\times10^{-4}$ सेमी^{2}

इस प्रकार बिंब क्षेत्र में सौर ऊर्जा का संकेंद्रण $= 3\times10^{-6}/3\times10^{-4} = 10^{-2}$ किलोवाट/सेमी^{2} $= 100$ किलोवाट/मी^{2}

यह ऊर्जा पृथ्वी पर आपतित सौर ऊर्जा से 100 गुणा अधिक होती है। अत: सूर्य को महज कुछ सेकंड तक देखने पर भी रेटिना झुलस सकता है।

रेटिना का झुलसना

रंजित पटल एवं रेटिना आम तौर पर सूरज को देखने के कारण ही झुलसते हैं। कभी–कभी नेत्र दुर्घटनावश चकाचौंध कर देने वाले प्रकाश, बिजली अथवा उच्च वोल्टता वाली विद्युत् धारा के शार्ट सर्किट हो जाने से उत्पन्न प्रदीप्ति के सम्पर्क में आ जाता है। तब भी रंजित पटल और रेटिना के क्षतिग्रस्त होने की आशंका रहती है। बिरले कभी कार्बन आर्क जैसे तेज रोशनी पैदा करने वाले कृत्रिम प्रकाश–स्रोत के सम्पर्क में आने पर भी रेटिना और रंजित पटल झुलस जाते हैं। कभी–कभार हमें नेत्र पर तीव्र प्रकाश के प्रभाव की अनुभूति मात्र होती है। उस दशा में कुछ तात्कालिक आत्मपरक (सब्जेक्टिव) लक्षण दिखाई देते हैं। लेकिन प्रकाशीय उत्सर्जन का गंभीर प्रभाव पड़ने पर एक घातक छाला उत्पन्न हो जाता है। इससे नेत्र स्थायी रुप से क्षतिग्रस्त हो जाता है। मैक्युला के भी प्रभावित होने पर स्थिति गंभीर हो जाती है (अधिकतर मामलों में ऐसा ही होता है)। सूर्य के कारण रंजित पटल और रेटिना को होने वाली क्षति (सौर अंधता अथवा फोटो रेटिनाइटिस) को इसी श्रेणी में रखा जा सकता है।

आइए, कल्पना करें कि सूर्य 6000 केल्विन तापमान वाला एक काला पिंड (ब्लैक बॉडी) है। इससे उत्सर्जित होने वाली ऊर्जा की 1.36 किलोवाट प्रति वर्ग

मीटर मात्रा पृथ्वी की सतह पर उपलब्ध होगी। यदि आँख की पुतली संकुचित होकर दो मिलिमीटर की हो जाए (सूर्य को सीधे देखने पर ऐसा ही होता है) तो इस ऊर्जा का लगभग 3 प्रतिशत भाग नेत्र में प्रवेश करेगा। उसका 30 प्रतिशत से भी अधिक अंश नेत्र के विभिन्न आंतरिक अवयवों से गुजरने के दौरान नष्ट हो जाता है। सूर्य जैसे किसी पिंड को देखने के कारण रेटिना पर होनेवाले ऊर्जा संकेंद्रण का आकलन करने के लिए हम इस जानकारी का उपयोग करते हैं। सामान्य सी गणना भी दर्शा सकती है कि सूर्य को केवल कुछ सेकंड के लिए भी सीधे देखना क्यों खतरनाक है। कृपया बाक्स 1 देखें।

दुर्घटना के मामले में प्रकट होने वाले लक्षण

ऐसी दुर्घटनाओं में स्वानुभूतिमूलक (सब्जेक्टिव) लक्षण प्रकट होते हैं। इनकी गंभीरता का रेटिना कैसे दिखता है इस बात से कुछ लेना–देना नहीं है। **अधिकतर मामलों में तत्काल कोई विशेष असामान्यता महसूस नहीं की जाती। केवल चौंधिया जाने का अहसास होता है। लेकिन थोड़ी देर बाद ही लगता है कि आँख के सामने कोई छितराया हुआ बादल अनियमित क्रम में लहरा रहा है। इसके साथ ही परेशान करने वाले बिंब दिखाई देने लगते हैं। इसके अतिरिक्त फोटो फोबिया (प्रकाश से भय), फोटोप्सिया (प्रकाश की दमक) और क्रोमैटोप्सिया (रंगों को देखने में बाधा) के लक्षण भी प्रकट होने लगते हैं। 24 घंटे बाद ये छितराए हुए बादल सिमटकर एक घने अंध बिंदु (स्कोटोमा) में परिवर्तित हो जाते हैं। यह स्थिति कई सप्ताहों या महीनों तक अथवा स्थायी रुप में भी बनी रह सकती है।** यह अंध बिंदु विशेष कर दृष्टि के केन्द्र में उभरता है और वहाँ की दृष्टि अत्यंत मंद पड़ जाती है। यह आँख की देखने की क्षमता को घटा कर औसतन 6/12 कर देता है। इसका अर्थ यह है कि एक सामान्य दृष्टि वाला व्यक्ति जिस वस्तु को 12 फुट की दूरी से देख सकता है, उसी वस्तु को अंध बिंदु अथवा स्कोटोमा से प्रभावित व्यक्ति 6 फुट की दूरी से देख पाता हैं। लेकिन दृष्टि क्षमता घटकर 6/60 (अर्थात् सामान्य दृष्टि वाला व्यक्ति जिस वस्तु को 60 फुट की दूरी से देख सकता है इसे अंध बिंदु से प्रभावित व्यक्ति 6 फुट की दूरी से देख पाता है) या उससे भी कम होने के बिरले ही मामले प्रकाश में आते हैं। अंध बिंदु के प्रकट होने की जानकारी दृष्टि में आए धुंधलापन अथवा लघु आकार वाले पदार्थो या परीक्षण पत्रों (टेस्ट लेटर) के न दिखने से मिलती है। शुरुआती सप्ताहों में अक्सर दृष्टि में झिलमिलाहट का एहसास होता है अथवा वह चकराती सी लगती है। दृष्टि के केन्द्रीय क्षेत्र में वस्तुओं का आकार परिवर्तित रुप में (मेटामार्फोजिआ) दिखाई दे सकता है। वस्तु अपने वास्तविक आकार से बड़ी या छोटी दिखाई दे सकती है। इस स्थिति की शुरुआत रेटिना में उपस्थित पदार्थो के शोफ (एडेमा) के साथ होने वाले विस्थापन से होती है। अंततः नतीजा होता है – ऐसे परिवर्तन कि एक बार क्षति होने पर स्वयं उसमें कोई सुधार न हो सके। **इसलिए खतरा मोल न लें। ऊपर बताए गए लक्षणों में से किसी का भी आभास हो तो फौरन किसी नेत्र विज्ञानी से सम्पर्क करें। इस स्थिति से बचने के लिए इसी लेख के अंत में कुछ दिशा–निर्देश दिए गए हैं। उनमें बताया गया है कि सूर्य को सुरक्षित ढंग से कैसे देखें। इन दिशा–निर्देशों का पालन करें।**

सूर्य को सीधे देखने के घातक प्रभाव के वास्तविक लक्षण विशेष प्रकार के होते हैं। लेकिन स्वानुभूतिक लक्षणों के प्रकट होने पर भी कई बार आंख का अंदरूनी भाग (फंडस) सामान्य प्रतीत होता है। सौर विकिरण के मामूली दुष्प्रभाव वाले मामलों में मैक्युला का रंग सामान्य से अधिक गहरा हो जाता है। निश्चित तौर पर ऐसा रंजित पटल में रक्त संकुलता बढ़ जाने के कारण ही होता है। अधिक गंभीर मामलों में मैक्युला के केन्द्रीय भाग में उभार आ जाता है। शायद इसका रंग धूसर हो जाता है और इससे मामूली रक्त स्राव भी होने लगता है। इसके साथ ही केन्द्र में एक गहरा धब्बा उभर आता है जिसे अपना आधार छोड़ चुके रेटिना के हिस्से चारों ओर से घेर लेते हैं। इस प्रक्रिया में फोविया में एक खास परिवर्तन यह दिखता है कि उस पर एक या एक से अधिक पीले–सफेद धब्बे

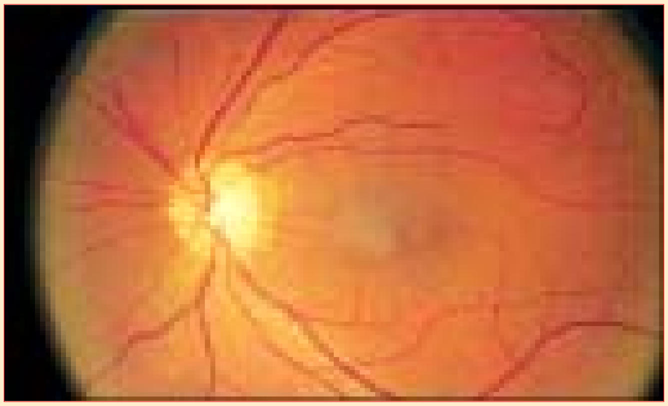

चित्र 10 : यह चित्र एक युवक की आंख के पृष्ठ भाग का है, जिसने 1966 में खंडग्रास सूर्यग्रहण असुरक्षित तरीके से देखा था। चाय आकार के दाग सूर्य ग्रहण के दौरान नेत्रपटल झुलसने से होने वाले विशिष्ट दाग है। इस आंख में युवक की दृष्टि 20/30 (अर्थात् 6/9) जितनी कम हो गयी है। स्रोतः BBC News http://news.bbc.co.uk/1/hi/sci/tech/1376184.stm

तेजी से उभर आते हैं। ये आकार में गोल अथवा कभी–कभी चाप के आकार के होते हैं। इनके चारों ओर रंग कणों का एक अनियमित सा चित्तीदार क्षेत्र बन जाता है। फंडस के पिछले भाग की तरफ बढ़ने पर ये रंगकण क्रमशः धूमिल होते नजर आते हैं (चित्र 10 तथा चित्र 11)। इन परिवर्तनों का संबंध सौर विकिरण के कारण नेत्रों को हुई क्षति से होता है। इन्हें प्रयोगात्मक दृष्टि से देखा जा सकता है। दृष्टि पटल दर्शी से इनका काफी सावधानी से निरीक्षण करने पर मालूम होता है कि यह केंद्रीय भाग वास्तव में रंगकणों से युक्त उपकला का एक झुलसा हुआ छिद्र है और इसे चारों ओर से घेरने वाला बिंदुचक्र रंगकणों का संघनन दर्शाता है। **और कुछ अत्यंत गंभीर मामलों में मैक्युला में एक विशेष प्रकार का छिद्र बन सकता है।**

रेटिना के झुलसने के बाद दृष्टि की स्थिति

अधिकतर मामलों में एक–दो महीनों के अंदर ही दृष्टि में सुधार आने लगता है और यदि अंध बिन्दु बरकरार भी रहती है, तो वह दिन–ब–दिन छोटी होती जाती है। इसके साथ ही मैक्युला का पीले धब्बों वाला लालिमा–युक्त क्षेत्र भी धूसर रंग धारण करने लगता है और धीरे–धीरे अदृश्य हो जाता है। कुछ मरीजों के रेटिना साल भर से अधिक समय तक जख्मी रहते हैं। ऐसे बहुत कम लोग होते हैं जिनके रेटिना के जख्म सालों बाद तक नहीं भरते। वैसे रेटिना के

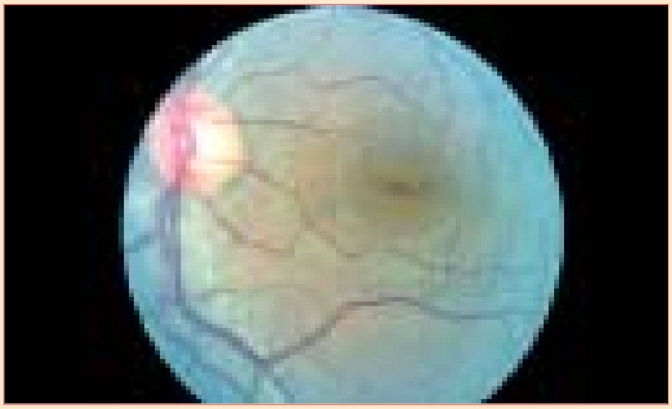

चित्र 11 : इस चित्र में अधिक मात्रा में नेत्र पटल झुलसने से बनने वाले दाग दिखाए गए हैं। चित्र में एक युवक की प्रभावित बायी आंख, जिसने खंडग्रास सूर्यग्रहण असुरक्षित तरीके से देखा था, प्रदर्शित की गयी है। नेत्र पटल के मध्य भाग में कई चापाकार दाग नेत्र पटल के झुलसने के कारण दिखाइ देते हैं जिसके कारण यह आंख दृष्टिविहीन हो चुकी है। इस रुग्ण की आंख में दृष्टिक्षमता 20/400 अर्थात् (6/120) जितनी कम हो चुकी है। स्रोतः BBC News http://news.bbc.co.uk/1/hi/sci/tech/1376184.stm

बाक्स 2

सूर्य ग्रहण के कारण अंधता : एक दुर्घटना का अध्ययन

सुरक्षित फिल्टर के बिना सूर्य की ओर सीधे देखना एक हद तक खतरनाक हो सकता है। सूर्यग्रहण के दौरान भी सूर्य की तरफ देखना इतना ही हानिकारक होता है। केवल पूर्ण सर्यग्रहण की पूर्णता अवधि के दौरान ही सूर्य की तरफ देखना सुरक्षित होता है।

4 फरवरी, 1962 को एक आंशिक सूर्य ग्रहण लगा। इसे हवाई द्वीप–समूह से देखा जा सकता था। उस दिन आकाश बिल्कुल साफ था। रविवार की दोपहर थी। साथ ही समाचार माध्यमों ने उस ग्रहण की ओर लोगों का ध्यान पहले ही आकर्षित कर दिया था। इस सभी कारणों ने मिलकर सौर अंधता (सोलर रेटिनाइटिस) के प्रकोप को महामारी के स्तर तक पहुँचा दिया। उस दिन आकाश बादलों से लगभग पूरी तरह रहित था। नतीजतन पृथ्वी की सतह पर मापी जा सकने वाली सूर्य से उत्सर्जित आपतित ऊर्जा की मात्रा काफी घट गई थी। उस ग्रहण का अध्ययन करने से मालूम हुआ कि वर्ष की वह विशेष अवधि, सूर्य की ऊँचाई, ग्रहण का कोण, बादलों की मात्रा और ग्रहण देखने के लिए लोगों को मिला फुर्सत का वक्त ही सौर अंधता के ज्ञात मामलों की मुख्य वजह थे।

हवाई के सैन्यकर्मियों और उनके आश्रितों के बारे में किए गए एक अध्ययन से मालूम हुआ कि सूर्य ग्रहण के दूसरे दिन सौर अंधता का पहला मरीज अमेरिका के ट्रिपलर जनरल हास्पिटल में उपस्थित हुआ। वह चिकित्सालय सैनिकों के लिए ही बना था। जल्दी ही दूरस्थ चिकित्सालयों से भी एक या दोनों आँखों की दृष्टि में एकाएक व्यावधान की शिकायत करने वाले मरीजों के बारे में खबरें आने लगी। ऐसे मरीजों की संख्या लगातार बढ़ रही थी। ये अलग–अलग ढंग की तकलीफें बयान कर रहे थे, लेकिन अधिकतर मरीज शुरुआती दौर में निगाह में धुँधलापन आने की शिकायत कर रहे थे। दूसरे दिन सुबह तक यह धुँधलापन एक केन्द्रीय अंधबिंदु (स्कोटोमा) में परिवर्तित हो चुका था। केवल एक ओर की दृष्टि में व्यावधान आने के मामलों में मरीजों को केन्द्रीय अंध बिन्दु की उपस्थिति का आभास तत्काल नहीं हो सका। ग्रहण के महीनों बाद भी नए मरीज आते रहे। हर चार में से तीन सैन्यकर्मियों ने शुरुआती तकलीफों का जिक्र नहीं किया। लेकिन जब वे राइफल रेंज पर सटीक निशाना नहीं लगा सके, तब उनकी डाक्टरी जाँच की गई और उनकी आँखों में जख्म पाए गए।

उस सौर अंधता महामारी की खास बात यह थी कि तकरीबन सभी मरीजों की आँखें एक साथ क्षतिग्रस्त हुई थी। रेटिना के झुलसने पर पहली अवस्था यह होती है कि संबंधित नेत्र के फोविया क्षेत्र के केन्द्र में एक पीला धब्बा उभर आता है। दूसरे चरण में मैक्युला में लालिमा आ जाती है। इसके केन्द्र में पहले चरण में उभर आया पीला धब्बा होता है। मैक्युला में आई लालिमा इस बिंदु पर सबसे गहरी होती है। लगभग तीन–चार सप्ताह में यह लालिमा धीरे–धीरे समाप्त हो जाती है। तीसरे चरण में केन्द्र पर रंग बिंदुओं की चित्ती जैसी बन जाती है। इस चरण में मैक्युला में एक छिद्र बन जाता है अथवा रेटिना की सबसे अंदरुनी पर्तो में रंग बिंदुओं की चित्ती जैसी बन सकती है। इससे दृष्टि स्थायी तौर पर क्षतिग्रस्त हो सकती है।

सूर्यग्रहण के तत्काल बाद जिन मरीजों की डाक्टरी जाँच की गई, उनकी दृष्टि तीक्ष्णता पर अलग–अलग सीमा तक दुष्प्रभाव पड़ा था। इन मरीजों ने सूर्यग्रहण को देखने के लिए किसी सुरक्षात्मक उपाय का सहारा नहीं लिया था। उनमें से कइयों ने उंगलियों के बीच की झिरी से ग्रहण देखने अथवा अनिश्चित घनत्व वाली फोटो फिल्मों, धूप चश्मों, धुंधले शीशों अथवा कैमरे के व्यू–फाइंडर से सूर्य को देखने का जोखिम उठाया था। ये तरीके सुरक्षित नहीं माने जाते। जाँचे गए 52 मरीजों में से 27 ने अपनी दृष्टि की सामान्य तीक्ष्णता पुनः हासिल कर ली। बाकी बचे रोगियों की दृष्टि को विभिन्न सीमाओं तक क्षति पहुँची। उन्हें सामान्य दृष्टि वापस मिलने की संभावना 50 प्रतिशत थी। जिन रोगियों की एक आँख में पहले से पेशीगत असंतुलन था, अथवा जो एंब्लिओपिया (एक आँख की कमजोर दृष्टि) से प्रभावित थे, उनमें सौर अंधता के कारण तीक्ष्ण दृष्टिवाली आँख क्षतिग्रस्त हुई थी।

झुलसने के कुछ महीने बाद दृष्टि में सुधार भले आने लगे, पर अधिकतर मामलों में कुछ न कुछ कमी रह ही जाती है।

दृष्टि की तीक्ष्णता का स्तर 6/6 होने पर भी उसका सामान्य हो जाना जरूरी नहीं है। कुछ मामलों में केंद्रीय अथवा पराकेंद्रीय अंध बिंदु के अवशेष बरकरार रहते हैं। ऐसा दोनों आँखों में होने पर पढ़ने तथा कुशलतापूर्वक कार्य करने की क्षमता स्थायी तौर पर क्षीण हो जाती है। अधिकतर मामलों में मैक्युला पर बन गए स्थायी प्रकृति के जख्म, खास तौर पर एक छिद्र के कारण मरीज अपनी केन्द्रीय दृष्टि क्षेत्र का एक छोटा–सा भाग हमेशा के लिए गंवा बैठता है। वैसे कुछ सालों के बाद नेत्र की दृष्टि क्षमता में काफी सुधार आ जाता है और अंध बिंदु सिमटकर अत्यंत लघु हो जाता है। निस्संदेह ऐसी दशा में दृष्टि सामान्य सी प्रतीत होती है। शेष रही नगण्य सी कमी पर मरीज का ध्यान नहीं जाता है। यह स्थिति प्रसन्नतादायक होती है। लेकिन दुखद तथ्य यह है कि अवशिष्ट कमी सदैव बनी रहती है। अतः सूर्य की ओर सीधा न देखें। खंडग्रास सूर्यग्रहण के दौरान भी। इस तथ्य को समझाने के लिए 1962 में ''हवाई'' द्वीप में घटित खंडग्रास सूर्यग्रहण को देखने के पश्चात् अनुभूत अंधत्व का एक अध्ययन बाक्स (2) में प्रस्तुत किया गया है।

सूर्य का अवलोकन कैसे करें?

ग्रहण लगा हो, अथवा न लगा हो, सूर्य को सीधे हरगिज न देखें। सूर्य ग्रहण की पूर्णता की स्थिति के अलावा किसी अन्य स्थिति में सूर्य को सुरक्षित एवं जाँचे जा चुके फिल्टर की सहायता के बिना देखने पर आपकी आँखे अस्थायी अथवा स्थायी तौर पर क्षतिग्रस्त हो सकती हैं। सूर्य को नंगी आँखों से केवल पूर्ण (खग्रास) सूर्य ग्रहण के कुछ सेकंड अथवा कुछ मिनट की अवधि के दौरान ही सुरक्षित ढंग से देखा जा सकता है। उल्लेखनीय है कि यदि आंशिक ग्रहण के दौरान सूर्य की सतह का 99% भाग आच्छादित हो जाए, तो भी उसका शेष बचा हुआ प्रकाश मंडलीय चाप इतना चमकीला होता है कि इसे आँख की सुरक्षा का पर्याप्त उपाय किए बिना सुरक्षित ढंग से नहीं देखा जा सकता। इसलिए **किसी भी आंशिक अथवा वलयाकार(कंकणाकृति) सूर्य ग्रहण को नंगी आँखों से देखने का प्रयास न करें। यदि आप उपयुक्त फिल्टरों की सहायता लिए बिना ऐसा करते हैं तो आपकी आँखें स्थायी तौर पर क्षतिग्रस्त हो सकती हैं। यहां तक कि आप अंधे भी हो सकते हैं।** इसलिए आंशिक एवं वलयाकार सूर्य ग्रहण को सुरक्षित ढंग से देखने के लिए कुछ दिशा–निर्देशों को मानना जरूरी है। यह सत्य है कि धुंधले शीशे, धूप चश्में, रंगीन फिल्म और उदासीन घनत्व वाले फोटो फिल्टरों से सूर्य धूमिल नजर आता है, पर केवल इस वजह से ही आपकी आँखें सुरक्षित नहीं हो जाती। नेत्रों को मुख्यतः अदृश्य अवरक्त किरणें क्षतिग्रस्त करती हैं। अतः हर प्रकार के अनावश्यक खतरों से बचें।

पारगमन की घटना के दौरान सूर्य का अवलोकन करना किसी भी दिन सूर्य का अवलोकन करने के समान है। सूर्य ग्रहण को सुरक्षित ढंग से देखने के लिए आवश्यक है कि सूर्य के प्रकाश की तीव्रता को घटाकर एक लाखवें हिस्से तक या उससे भी कम कर दिया जाए। 60 वाट के जलते हुए बिजली के बल्ब की रोशनी में छपे हुए अक्षरों को पढ़ना नामुमकिन बना सकने में सक्षम कोई भी फिल्टर इस कार्य के लिए उपयुक्त सिद्ध हो सकता है। इस प्रकार का प्रभावी फिल्टर बनाने के लिए दो या उससे भी अधिक अति उद्भावित (एक्सपोज्ड) श्वेत–श्याम फोटो फिल्मों या X–रे फिल्मों को एक के ऊपर एक रखें (इस काम के लिए मंद फिल्में सर्वाधिक उपयुक्त होती हैं)। फिल्मों को एक के ऊपर एक रखते जाने से उस फिल्टर का घनत्व क्रमशः बढ़ता जाएगा। एक ऐसी स्थिति आएगी कि उसमें से देखने पर 60 वाट के बल्ब की रोशनी में छपे हुए अक्षरो को नहीं पढ़ा जा सकेगा। (संदर्भ : आर्काईब्ज् आफ आप्थैल्मोलाजी 70(1964)138)। उस स्थिति में एक अंधेरे कमरे में बल्ब की रोशनी ऐसी लगेगी मानो पूर्णिमा की रात में मद्धिम

बाक्स 3
शुक्र पारगमन को देखने के लिए क्या करें व क्या न करें

क्या करें

- सूर्य के प्रतिबिम्ब को किसी पिन के बराबर छिद्र से छाया युक्त अर्थात् शेडेड दीवार पर प्रेषित करें।
- किसी सफेद कागज अथवा स्क्रीन या फिर दीवार पर सूर्य के प्रतिबिम्ब को प्रक्षेपित करने के लिए छोटी दूरबीन अथवा बाइनोक्यूलर का उपयोग किया जा सकता है। इस बात का ध्यान अवश्य रखा जाए कि यदि दूरबीन अथवा बाइनोक्यूलर का कोई भाग प्लास्टिक का है तो उसे सूर्य के प्रकाश की गर्मी से गर्म तथा पिघलने से बचाना होगा।
- ग्रहण के कारण आंशिक रूप से ढके सूर्य को सीधा ही किन्तु सुरक्षित ढंग से देखने के लिए वैज्ञानिक तरीके से परीक्षित व प्रमाणित फिल्टर का ही प्रयोग करना चाहिए। इस काम के लिए अदीप्त (अर्थात् डार्क) वेल्डर ग्लास (नं. 14) उपयुक्त है। विज्ञान प्रसार किट में उपलब्ध फिल्टर का सूर्य ग्रहण को सुरक्षित ढंग से देखने में प्रयोग किया जा सकता है। ग्रहण को देखने के लिए सदैव अपनी एक आंख का ही प्रयोग करें। किसी भी परिस्थिति में, फिल्म को अंगुलियों से नहीं छुएं या मोड़ें या पोछें। किसी भी तरह की खरोंच या मोड़ने से फिल्म द्वारा सूर्य ग्रहण को सुरक्षित ढंग से देखना संभव नहीं होगा। कहने का तात्पर्य यह है कि इस तरह की लापरवाही या क्रिया से फिल्म इस लायक नहीं रहेगी कि उससे सूर्य ग्रहण को सुरक्षित ढंग से देखा जा सके।
- सूर्य को रुक–रुक कर देखें। कहने का तात्पर्य यह है कि उसे लगातार न देखें।

क्या न करें

- नंगी आंखों से सूर्य को देखने की चेष्टा न करें।
- सूर्य को कभी भी टेलिस्कोप या दूरबीन अथवा बाइनोक्यूलर से नहीं देखें।
- किसी भी ऐसे फिल्टर का प्रयोग न करें जो सूर्य की दृश्य तीव्रता को घटाता है। सूर्य की किरणों का बावन प्रतिशत वर्णक्रम के अवरक्त क्षेत्र में होता है। आंखों को इससे होने वाली क्षति वस्तुतः इन्हीं अदृश्य अवरक्त ऊर्जा के कारण होता है।
- सूर्य को देखने के लिए रंगीन फिल्म, धुएं से काले किए गए या रंगीन बनाए गए कांच जिसे स्मोक्ड ग्लास भी कहा जाता है, धूप के चश्मे, नॉन – सिल्वर्ड श्वेत–श्याम (ब्लैक एण्ड व्हाइट) फिल्म, फोटो ग्राफिक, न्यूट्रल डेन्सिटी फिल्टर्स तथा पोलरइजिंग फिल्टर्स का प्रयोग न करें। यह सभी सुरक्षित नहीं हैं।
- सस्ती दूरबीनों के साथ बिकने वाले उन सोलर फिल्टर्स (जो इस तरह से डिज़ाइन किए गए हैं जिनसे वे नेत्रक यानी आई–पीस में लगाए जा सकते हैं) का प्रयोग नहीं करें।
- रंगीन पानी में बनने वाली सूर्य की परछाई को नहीं देखें।

प्रकाशवाली चाँदनी बिखरी हो। दरअसल, फिल्म पर लगे मिश्रण में मौजूद रजत् धातु ही सुरक्षात्मक फिल्टर का काम करती है। लेकिन इस काम के लिए साधारण श्वेत–श्याम फिल्मों का उपयोग करना असुरक्षित है (भले ही उन्हें प्रकाश में अनावरित किया जा चुका हो)। इसकी वजह यह है कि इन फिल्मों में अक्सर रजत् धातु के बजाय रंजकों का (डाई) उपयोग किया जाता है। वेल्डिंग के लिए इस्तेमाल किया जाने वाला शेड नम्बर 14 का काला कांच सुरक्षित है। एक अन्य लोकप्रिय और कम खर्चीले विकल्प के रूप में ऐलुमिनियम की पर्त चढ़ी 'माइलर शीट' प्रचलित हैं। सूक्ष्म छिद्रों से रहित पूर्ण शीटों का निर्माण विशेषकर सूर्य को देखने के लिए ही किया गया हो ऐसी शीटें सुरक्षित होती हैं। साधारण किस्म की ऐलुमिनियमकृत माइलर शीट से सूर्यग्रहण को देखना सुरक्षित नहीं है। अधिक सावधानी बरतने के लिहाज से ऊपर बताए गए फिल्टरों से भी सूर्य को कुछ सेकंड तक ही देखें। 11 अगस्त, 1999 के पूर्ण सूर्य ग्रहण के बारे में नासा (NASA) के संदर्भ प्रकाशन 1398 में सुरक्षित सौर फिल्टरों का चयन करने के लिए उपयोगी

कुछ चुनिंदा सौर फिल्टरों की वर्णक्रमीय प्रतिक्रियाशीलता

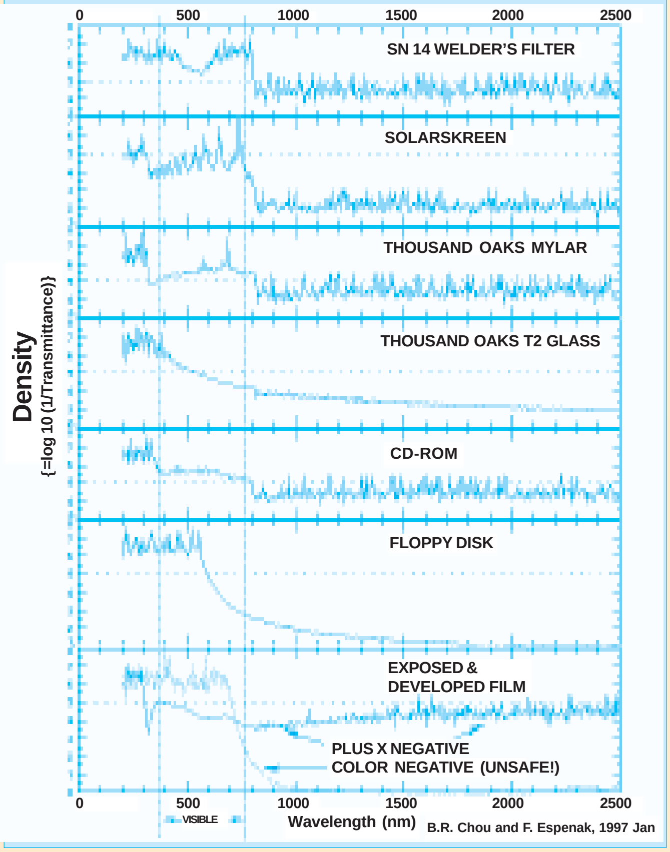

(टोटल सोलर इक्लिप्स आफ 1999, अगस्त 11, एस्पेनाक और एंडरसन, 1997 से पुनर्मुद्रित)

नोट : पारगम्यता t (अर्थात् किसी फिल्टर से गुजर जाने वाली प्रकाश की मात्रा प्रतिशत में) के अलावा किसी फिल्टर को पार करने वाली ऊर्जा की मात्रा को एक अन्य पारिभाषिक शब्द–घनत्व–से भी प्रदर्शित किया जा सकता है। इसकी कोई इकाई नहीं है। घनत्व "d" = log_{10} (1/T) घनत्व "O" से आशय होता है 100% पारगम्यता। 1 घनत्व का तात्पर्य होता है 10% पारगम्यता और 2 घनत्व का आशय होता है 1% पारगम्यता, इत्यादि।

चित्र 12

सूचनाएं दी गई हैं। विभिन्न फिल्टर कितने सुरक्षित होते हैं यह चित्र 12 में दर्शाया गया है। **यह स्पष्ट करना जरुरी है कि इन सुझावों के लिए कोई कानूनी दायित्व नहीं स्वीकार किया जा सकता।** इसका कारण यह है कि सावधानियां बरतने की सर्वाधिक उपयुक्त चेतावनियों के बावजूद ग्रहण को सीधे देखने से दुर्घटनाएं घट सकती हैं।

धुंधले शीशों, रंगीन फिल्मों और धूप चश्मों से ग्रहण को देखना सुरक्षित नहीं है। सबसे सुरक्षित तरीका यह है कि बेहद पतले सुराख (पिन होल) से एक मीटर दूरी पर रखे कार्डबोर्ड पर ग्रहण लगे सूर्य के बिंब को अंधेरे कमरे में प्रक्षेपित कराया जाए। शुक्र पारगमन देखने के लिए क्या करें और क्या न करें इस बारे में हिदायतें बाक्स 3 में दी गई हैं।

आभार प्रदर्शन

लेखक नई दिल्ली की अग्रणी नेत्र विज्ञानी डा० मनीषा गुप्ता को धन्यवाद देना चाहता है। उन्होंने इस विषय में गहरी रुचि ली और लेखक से अनेक

पृष्ठ... 19 पर जारी

2004 शुक्र का पारगमन

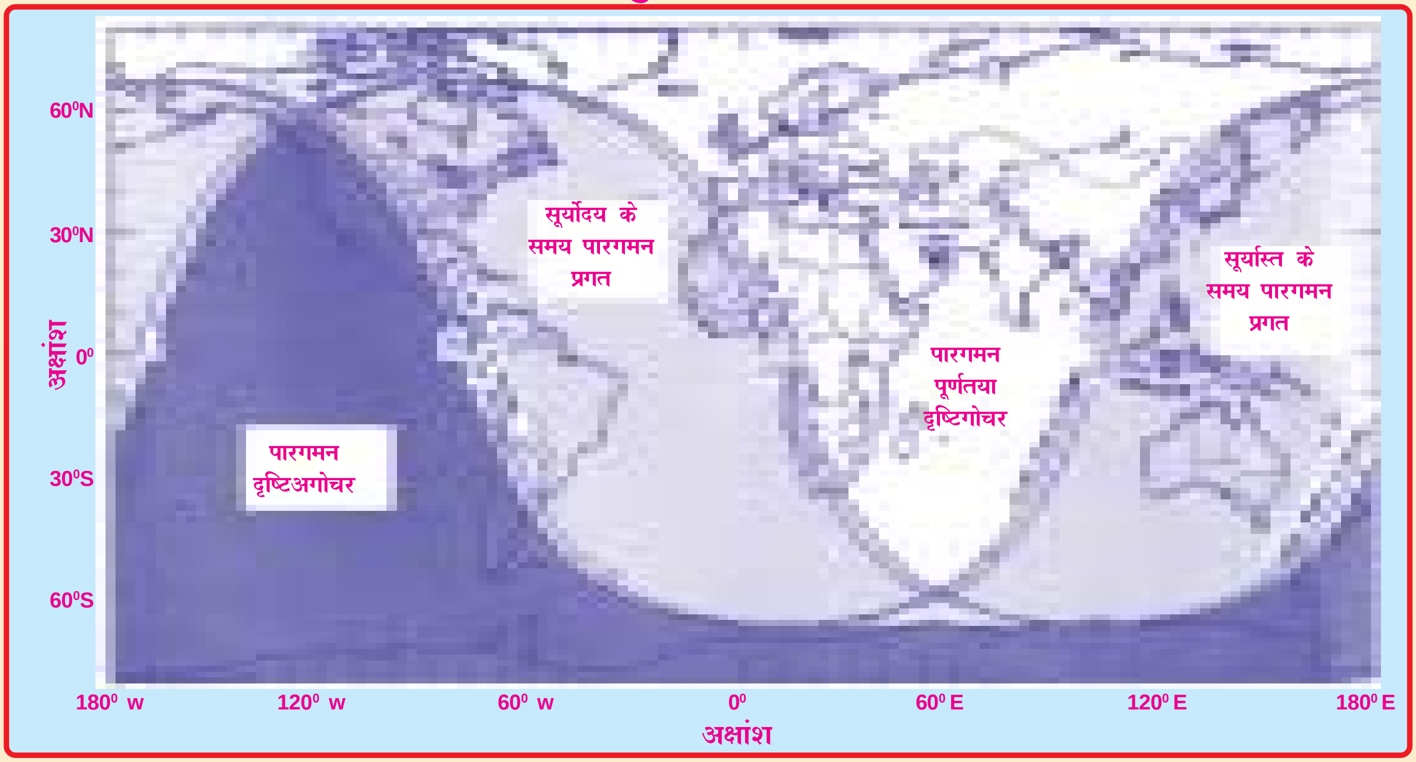

विश्व में शुक्र पारगमन की दर्शनीयता 08 जून 2004

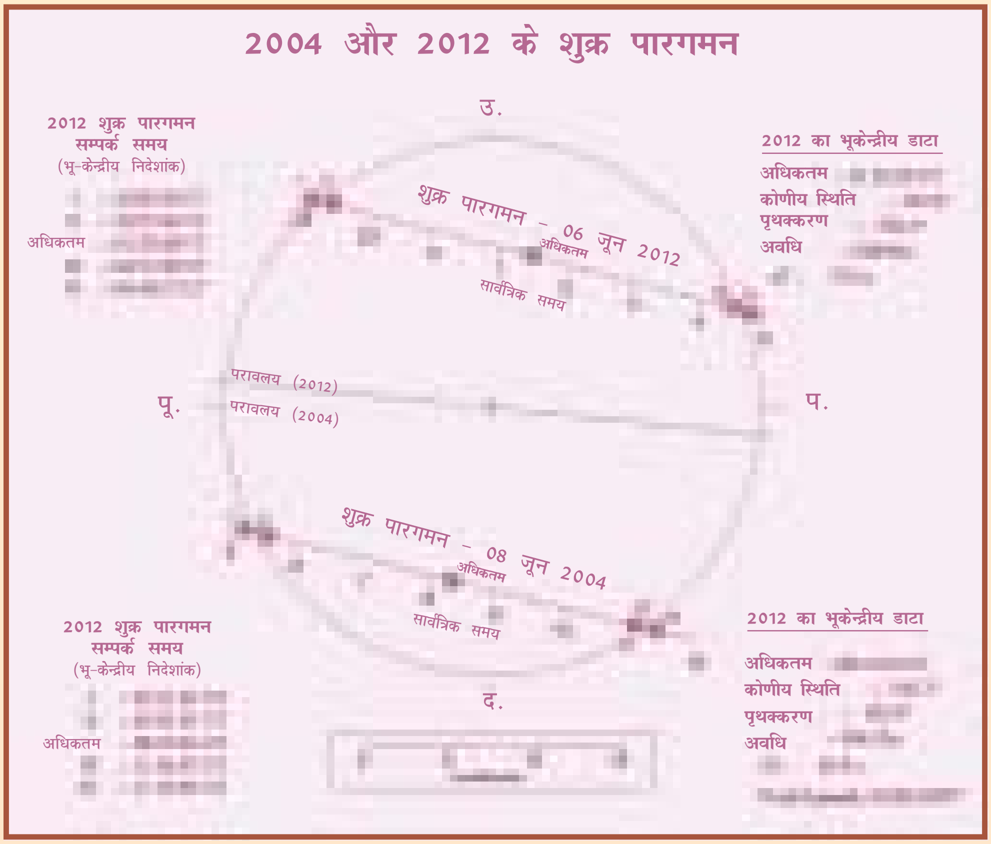

चित्र 1 : 08 जून 2004, और 06 जून 2012 को सूर्य के आरपार शुक्र का मार्ग

शुक्र पारगमन - 08 जून 2004

शुक्र पारगमन - 08 जून 2004 भारतीय परिस्थितियों के अनुसार

सूर्य के गोले के सामने से शुक्र का दुर्लभ पारगमन 08 जून 2004 को होगा। यह अनोखी घटना पूरे भारतीय उपमहाद्वीप में देखी जा सकेगी। निम्नलिखित तालिका कुछ भारतीय नगरों से संबंधित शुक्र पारगमन (भारतीय समय के अनुसार) के लिए भविष्यवाणी प्रस्तुत करती है। प्रमुख भारतीय नगरों में देखे जाने की समय सारणी उपलब्ध कराने के लिए हम डॉ. फ्रेड एस्पीनेक, नासा/जीएसएफसी के आभारी हैं।

पारगमन सम्पर्क

	सम्पर्क 1	सम्पर्क 2		सम्पर्क 3	सम्पर्क 4
स्थान	बाह्य अंतः प्रवेश घंटे मि. सै.	आंतरिक अंतः प्रवेश घंटे मि. सै.	महत्तम पारगमन घंटे मि. सै.	आंतरिक निर्गमन घंटे मि. सै.	बाह्य निर्गमन घंटे मि. सै.
भारत					
अगरतला	10:44:34	11:03:32	13:46:43	16:31:06	16:50:20
आगरा	10:46:01	11:05:04	13:48:01	16:31:37	16:50:48
अहमदाबाद	10:46:24	11:05:25	13:48:37	16:32:15	16:51:22
इलाहाबाद	10:45:35	11:04:35	13:47:39	16:31:30	16:50:42
आसनसोल	10:45:00	11:03:58	13:47:08	16:31:20	16:50:32
बैंगलोर	10:45:31	11:04:24	13:48:14	16:32:44	16:51:46
भोपाल	10:45:57	11:04:56	13:48:07	16:31:56	16:51:04
भुवनेश्वर	10:44:58	11:03:54	13:47:16	16:31:38	16:50:48
चण्डीगढ़	10:46:14	11:05:20	13:48:06	16:31:27	16:50:40
चेन्नई	10:45:15	11:04:07	13:47:56	16:32:33	16:51:36
कायंबटूर	10:45:30	11:04:22	13:48:19	16:32:57	16:51:58
दिल्ली	10:46:09	11:05:13	13:48:05	16:31:34	16:50:46
धनबाद	10:45:04	11:04:02	13:47:12	16:31:21	16:50:34
गंगटोक	10:44:59	11:04:56	13:48:36	16:32:46	16:51:49
गुवाहटी	10:44:38	11:03:37	13:46:41	16:30:55	16:50:11
हैदराबाद	10:45:37	11:04:32	13:48:04	16:32:19	16:51:24
इम्फाल	10:44:21	11:03:19	13:46:28	16:30:54	16:50:10
इन्दौर	10:46:05	11:05:05	13:48:17	16:32:04	16:51:12
ईटानगर	10:44:29	11:03:29	13:46:30	16:30:46	16:50:03
जबलपुर	10:45:41	11:04:40	13:47:51	16:31:47	16:50:56
जयपुर	10:46:13	11:05:16	13:48:15	16:31:46	16:50:57
कानपुर	10:45:46	11:04:48	13:47:48	16:31:31	16:50:43
कावरती	10:45:56	11:04:49	13:48:49	16:33:17	16:52:16
कलकत्ता	10:44:49	11:03:46	13:47:00	16:31:20	16:50:32
लखनऊ	10:45:44	11:04:45	13:47:44	16:31:28	16:50:40
मदुरै	10:45:20	11:04:11	13:48:13	16:32:58	16:51:58
मुंबई	10:46:15	11:05:13	13:48:39	16:32:33	16:51:38
नागपुर	10:45:42	11:04:40	13:47:58	16:31:59	16:51:07
नई दिल्ली	10:46:09	11:05:12	13:48:06	16:31:34	16:50:46
पटना	10:45:16	11:04:16	13:47:19	16:31:18	16:50:31
पोर्टब्लेयर	10:43:51	11:02:40	13:46:38	16:31:56	16:51:04
पुणे	10:46:08	11:05:05	13:48:33	16:32:31	16:51:36
शिलांग	10:44:36	11:03:34	13:46:40	16:30:57	16:50:13
श्रीनगर	10:46:32	11:05:40	13:48:17	16:31:22	16:50:37
सूरत	10:46:19	11:05:19	13:48:38	16:32:23	16:51:29
त्रिवेन्द्रम	10:46:24	11:04:14	13:48:22	16:33:10	16:52:10
वाराणसी	10:45:28	11:04:28	13:47:32	16:31:27	16:50:39
विशाखापट्टनम	10:45:08	11:04:02	13:47:33	16:31:59	16:51:06

पोलियो के उन्मूलन का वैश्विक प्रयास

अपंगकारी रोग

❒ शिवप्रसाद एम. खेनेड
ई–मेल : khened@yahoo.com

वर्ष 2004 संभवत: पोलियो के मामले में अंतिम वर्ष होगा। यदि ऐसा होता है तो 2007 तक पोलियो हमेशा के लिए उन्मूलन कर दिये जाने वाला दूसरा रोग के रूप में प्रमाणित हो सकेगा। यदि इस महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक उपलब्धि को साकार करना है तो अफगानिस्तान, पाकिस्तान, मिस्र, इथियोपिया, सूडान, सोमालिया, अंगोला, नाइजर, नाइजीरिया और विशेषकर भारत (वे देश जहां आज भी पोलियो एक स्थानिक रोग के रूप में विद्यमान है) को पोलियो के खिलाफ बिना रुके अपनी अंतिम लड़ाई जारी रखने की आवश्यकता है। भारत, विश्व में कुल पोलियो रोगियों के 83 प्रतिशत हिस्से का हकदार है। पोलियो के और प्रतिकूल वृद्धि के बावजूद 2002 के 1,600 पोलियो रोगियों के मुकाबले 2003 में 230 हो जाना पोलियो मुक्त विश्व की दिशा की ओर बढ़ते एक उपयुक्त कदम का विश्वास दिलाता है। हालांकि, हमें यह अवश्य याद रखना चाहिये कि विस्तृत सार्वजनिक स्वास्थ्य के लक्ष्य सबसे अधिक मानव सहयोग पर निर्भर करते हैं– चाहे संबंधित प्रौद्योगिकी जितनी भी बेहतर या परिवर्द्धित क्यों न हो। इसलिए मुख्य जोर इसी दिशा में होना चाहिए।

इस आलेख में पोलियो टीके के इतिहास एवं विकास पर प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है तथा इतिहास में सबसे बड़ी सार्वजनिक स्वास्थ्य पहल–वैश्विक पोलियो उन्मूलन के पीछे के घटना क्रम एवं संघर्ष की भी चर्चा होगी। यह बड़ी बाधाओं के विरुद्ध पोलियो को पराजित करने के प्रयास की चित्ताकर्षक कहानी की जानकारी भी प्रदान करेगा।

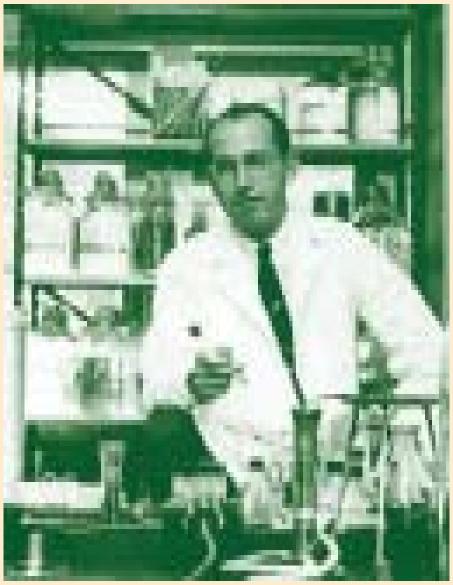

पिट्सबर्ग विश्वविद्यालय की प्रयोगशाला में पोलियो टीके पर काम करते हुए डॉ. जोनास साल्क

पोलियो क्या है?

पोलियोमाइलिटिस अर्थात् मेरुरज्जु के धूसर द्रव्य का शोथ एक अद्वितीय, भयंकर प्रबल रोग है, जिसने पूरे विश्व से इसके अंतिम उन्मूलन को सुनिश्चित करने तथा इसके फैलाव को नियंत्रित करने के लिये विशेष ध्यान देने और पर्याप्त वित्तीय निवेश की मांग की है और निरंतर मांग करता है। पोलियोमाइलिटिस शब्द रोग स्थल के लिए दो ग्रीक शब्दों को जोड़कर बनाया गया है: *पोलियोस* जिसका अर्थ है धूसर, *माइलोस* जिसका अर्थ है मज्जा, तथा अंग्रेजी प्रत्यय *इटिस* का अर्थ है शोथ। पोलियो शिशु अंगघात, हाइन–मेडिन रोग, निम्न अग्रांगों की दुर्बलता, और मेरुरज्जु घातज अंगघात जैसे कई नामों से जाना जाता है। आम इस्तेमाल के लिए पोलियोमाइलिटिस शब्द को संक्षिप्त कर *पोलियो* कर दिया जाता है। पोलियो वायरस (विषाणु) के कारण होने वाला एक अति संक्रामक रोग है, जिसका सिर्फ मनुष्य ही प्राकृतिक परपोषी है। उच्च संक्रामक पोलियो वायरस दूषित कूड़ा–करकटों या मुख संबंधी उत्सर्जन के सम्पर्क में आने से फैलते हैं। बच्चे इस वायरस से सबसे अधिक प्रभावित हो जाते हैं। यह वायरस शरीर में नाक या मुंह के रास्ते प्रवेश करता है तथा आंतों में पहुंचकर अंडे देता है। कुछ दिनों के बाद, अधिकांश रोगी या तो उपगामी हो जाते हैं या फ्लू जैसे लक्षणों यथा सिरदर्द, मिचली, उल्टी और बुखार का अनुभव करते हैं। ऐसे लक्षण दिखाई पड़े या नहीं, इस अवस्था में लोग दूसरों में रोग संक्रमित कर सकते हैं।

पोलियो मेजबान शरीर में संक्रमित कूड़ा–करकटों के साथ सम्पर्क होने से अथवा भोजन, पानी या हवा में तैरती संक्रमित छोटी–छोटी बूंदों के माध्यम से प्रवेश करता है। उसके बाद वायरस रक्तप्रवाह में प्रवेश करता है, और रोगी की प्रतिरक्षा प्रणाली वायरस के विरुद्ध प्रतिजैविक का विकास करती है। अधिकांश मामलों में, प्रतिरक्षा प्रणाली वायरस की वृद्धि को रोकती है तथा रोग के प्रति दीर्घावधिक प्रतिरक्षा प्राप्त कर लेती है। हालांकि 10 प्रतिशत संक्रमित लोगों में लक्षण दिखाई पड़ते हैं और एक प्रतिशत लोग ही पोलियो के घातज प्रकार से प्रभावित होते हैं। गंभीर मामलों में पोलियो वायरस मस्तिष्क और मेरुरज्जु में तंत्रिकाओं को नष्ट करता है, जो छाती, पैर या भुजाओं की मांसपेशियों के पक्षाघात का कारण बनता है। एक बार संक्रमण हो जाने के बाद पोलियो वायरस तंत्रिका तंत्र पर आक्रमण करता है, विशेषकर मेरुरज्जु के आंतरिक सिरा को क्षतिग्रस्त करता है जिसकी वजह से मांसपेशी पक्षाघात होता है, यह सामान्यत: भुजाओं और पैरों की ऐच्छिक मांसपेशियों को प्रभावित करता है। पांच से दस प्रतिशत रोगी श्वसन और पाचन के पक्षाघात के कारण मर जाते हैं।

पोलियो का भय

बीसवीं शताब्दी के प्रथमार्द्ध में घातक पोलियोमाइलिटिस सम्भवत: सर्वाधिक ज्ञात भयंकर रोग था। पोलियो बहुत तेजी से प्रहार करता था, उसका कोई इलाज नहीं था, और यह पीड़ितों को जीवनभर के लिए अपंग बना देता था। बैसाखियों पर लंगड़ाते, व्हीलचेयर पर घूमते, या बड़े से लोहे के बिस्तर पर बिना हिले–डुले पड़े रहते, असंख्य पीड़ितों की आबादी वर्ष–दर–वर्ष बढ़ती गयी। यहां तक कि पोलियो संक्रमण की सुस्पष्ट क्रियाविधि कई वर्षों तक एक गरमागरम बहस का विषय रही; बहुत–से क्षेत्र सख्त संगरोध के तहत रखे गये, जब इस रोग के रोगियों ने अपने आप को प्रकट करना प्रारंभ कर दिया। इस शताब्दी के प्रथमार्द्ध में केवल एड्स के चारों तरफ व्याप्त भय ही पोलियो के बारे में लोगों के अनुभव से प्रतिद्वंद्विता कर सकता था।

मानव इतिहास में अभी तक हम केवल एक ही डरावने रोग के सम्पूर्ण उन्मूलन के साक्षी बने हैं, और वह दो दशक से भी पहले चेचक था। अब मनुष्य एक दूसरी सफलता के किनारे खड़ा है, वह है पोलियो का वैश्विक उन्मूलन– यह एक ऐसी महाविपत्ति है जिसने एक समय प्रतिवर्ष आधा

मिलियन (5 लाख) लोगों को मार दिया था या अपंग बना दिया था, जिसमें से अधिकांश बच्चे थे। हमें हिम्मत नहीं हारना चाहिए और वह भी तब जब हम उस पर विजय पाने के काफी करीब हैं। जबकि हम उस अंतिम लक्ष्य की ओर आगे बढ़ रहे हैं तब यह उस विकास यात्रा पर पीछे मुड़कर दृष्टि डालने का समय है जिसने हमें इस उल्लेखनीय मानवीय प्रयास के लिए नेतृत्व प्रदान किया।

डॉ. अल्बर्ट ब्रूस साबिन

राष्ट्रपति रुज़वेल्ट, पोलियो उन्मूलन का योद्धा

1932 से 1945 तक संयुक्त राज्य अमेरिका के राष्ट्रपति रहे **फ्रैंकलिन डी. रुज़वेल्ट** ने अपने राष्ट्रपतित्व काल के दौरान पालियो के खिलाफ युद्ध घोषित किया। उन्होंने पोलियो के खतरे से लड़ने के लिए युद्धोपरांत अमेरिका के विपुल संसाधनों का रचनात्मक इस्तेमाल किया तथा एक ऐसे टीके के विकास के लिए वैज्ञानिक समुदाय को सहायता प्रदान की जो पोलियो को दूर करने में मददगार हो सके।

रुज़वेल्ट स्वयं एक पोलियो पीड़ित व्यक्ति थे। वे अपने पैरों में स्टील की भारी बंधनी पहनते थे और उनके के लिए चलना मुश्किल था। उनका अधिकांश समय व्हीलचेयर पर ही बीतता था। रुज़वेल्ट पोलियोमाइलिटिस या शिशु अंगघात से 1921 में उस समय प्रभावित हुए थे, जब वे कैम्पोबेलो द्वीप पर अपने कनैडियन समरहाउस में छुट्टियां मना रहे थे। रुज़वेल्ट के पैर स्थायी रूप से लकवाग्रस्त हो गये। उनकी तरह के मामलों में, वायरस मस्तिष्क और मेरुरज्जु तक पहुंच जाता है जहां यह द्विगुणित होता है तथा तंत्रिका ऊतकों को नष्ट करता है। उस समय यह रोग मेरुदंडीय या कंदाकार हो जाता है (अंतिम चार या पांच कपालीय तंत्रिकाओं को शामिल कर), जिस पर निर्भर हो तंत्रिकाएं प्रभावित हो जाती हैं। ये दोनों प्रकार मांसपेशीय दर्द, गर्दन व पीठ की अकड़न और संभावित पक्षाघात द्वारा वर्णित किये जाते हैं। मेरुदंडीय प्रकार अंगों को प्रभावित करता है। कंदाकार प्रकार फेफड़े को प्रभावित करता है तथा रोगी सांस नहीं ले सकते हैं। अपने घातक रूप में पोलियो के गंभीर आक्रमण के बाद, इस रोग के लिए कोई उपचार नहीं है, हालांकि पेशीय पक्षाघात जैसे लक्षणों में शारीरिक उपचार द्वारा सहायता मिल सकती है। किसी व्यक्ति में कितना सुधार होगा यह व्यक्ति–दर–व्यक्ति बदलता रहता है।

फ्रैंकलिन डी. रुज़वेल्ट, अमरीका के राष्ट्रपति। वह पोलियो से ग्रसित थे। उन्होंने पोलियो उन्मूलन के लिए अभियान चलाया था

पोलियो द्वारा पक्षाघात होने के कुछ वर्ष बाद, रुज़वेल्ट ने एक युवा व्यक्ति के बारे में सुना, जो कि पोलियो पीड़ित भी था और जिसने एक गर्म जल वाले जलाशय में कई गर्मियों तक तैरने के उपरांत उसे उसके रोग में बहुत सुधार दिखा था। यह जलाशय जॉर्जिया के एक छोटे शहर वार्म स्प्रिंग्स में एक पुराने समर रिजॉर्ट *'द मेरिवेदर इन'* से संबंधित था। रुज़वेल्ट ने 'इन' की गुप्त रूप से यात्रा की। यद्यपि उस जलाशय में जादुई विशेषताएं नहीं थीं, इसके बावजूद उसके गर्म जल में तैरने से उनके कमजोर पैरों को मदद पहुंची। इस जलाशय की ओर पोलियो के दूसरे पीड़ित भी आकर्षित हुए तथा रुज़वेल्ट ने इस पुराने 'इन' को एक पोलियो उपचार केन्द्र के रूप में बदलने का फैसला किया। उन्होंने जॉर्जिया वार्म स्प्रिंग्स फाउंडेशन की स्थापना की, जिसके वे स्वयं अध्यक्ष और उनके कानूनविद् मित्र बैसिल ओ' कोनर कोषाध्यक्ष बने। उस केन्द्र में आने वालों में से अधिकांश लोग अपने उपचार के लिए पैसा देने में अक्षम थे। फलतः रुज़वेल्ट और उनकी छोटी सी मित्र मंडली ने इस केन्द्र को चलाये रखने के लिए धन उपलब्ध कराया।

रुज़वेल्ट पोलियो से पीड़ित होने के बावजूद अपना सर्वश्रेष्ठ देने के प्रति दृढ़प्रतिज्ञ थे। उन्होंने न केवल अपने लब्धप्रतिष्ठ राजनीतिक कैरियर को जारी रखा, जिसके परिणामस्वरूप संयुक्त राज्य अमेरिका के राष्ट्रपति के रूप में उनका कार्यकाल भी काफी लम्बा रहा, बल्कि उन्होंने पोलियो के विरुद्ध लड़ने, इस घातक रोग के प्रति लोगों में जागरुकता बढ़ाने और अनुसंधान को प्रोत्साहित करने में अग्रणी भूमिका अदा की। हालांकि पोलियो ने प्लेग या इन्फ्लूएंजा की भांति आबादी की एक बड़ी संख्या का विनाश कभी नहीं किया, इसके बावजूद यह भयभीत करने वाला एक उच्च संक्रमणकारी रोग था जिसने गरीब और अमीर दोनों पर आक्रमण किया तथा भयानक प्रस्फोट के साथ अस्तित्व में आया, जिसको चिकित्सा के क्षेत्र में प्रगति के बावजूद रोक पाना असंभव प्रतीत होता था।

डाइम अभियान

1932 में रुज़वेल्ट राष्ट्रपति निर्वाचित हुए। इस तथ्य ने कि व्हाइट हाउस में एक व्यक्ति को इस रोग ने प्रभावित किया है, लोगों की जागरुकता को बढ़ाया। जॉर्जिया वार्म स्प्रिंग्स फाउंडेशन के न्यासियों ने यह फैसला किया कि 30 जनवरी को राष्ट्रपति के जन्म दिन पर देशभर के विभिन्न शहरों में नृत्य कार्यक्रम आयोजित कर फाउंडेशन के लिए धन की उगाही की जा सकती है। वार्म स्प्रिंग्स के लिए जितनी आवश्यकता थी उससे अधिक धन की उगाही की गयी, ताकि उसे वैज्ञानिक अनुसंधान के लिए इस्तेमाल किया जा सके। दयनीय होती पोलियो की महामारी के खतरा–संकेत तथा अमेरिकी युवा पर पड़ती इस वायरस के भयानक खतरे की घंटी को देखते हुए जनवरी 1938 में राष्ट्रपति रुजवेल्ट ने **नेशनल फाउंडेशन फॉर इंफैंटाइल पेरालिसिस** की स्थापना की। फाउंडेशन ने पोलियो धर्मयुद्ध के राष्ट्रीय महत्त्व और गैर–अंधभक्त विशेषता पर बल दिया। रुजवेल्ट विश्वास करते थे कि लोग किसी भी समस्या का समाधान कर सकते हैं यदि वे मिलकर काम करें। हास्य कलाकार इडी कंटोर ने **'मार्च ऑफ डाइम्स'** (लोकप्रिय न्यूजरील फीचर *'मार्च ऑफ टाइम'* को बजाते हुए) नामक मुहावरा प्रतिपादित करते हुए देशभर के रेडियो श्रोताओं से व्हाइट हाउस को सीधे अपने डाइम (डॉलर को दशमांश) भेजने की अपील की। इस अभियान को प्रारम्भ में निरुत्साहजनक प्रतिक्रिया मिली, लेकिन अभियान की शुरुआत के कुछ सप्ताह के अंदर ही यह काफी लोकप्रिय हो गया तथा व्हाइट हाउस डाइम के खेपों से भर गया, जिससे यह अभियान काफी सफल साबित हुआ। नेशनल फाउंडेशन ने 1979 में आधिकारिक रूप से अपना नाम बदलकर *मार्च ऑफ डाइम्स* रख लिया। पोलियो का टीका विकसित करने के लिए प्रमुख विश्वविद्यालयों और चिकित्सा विद्यालयों में चिकित्सा अनुसंधान को वित्त प्रदान कर इस अभियान से संग्रहीत धन का उपयुक्त इस्तेमाल किया गया। यह अनुसंधान पोलियो पर अंतिम विजय प्राप्त करने के लिए कदम–दर–कदम आगे बढ़ा है। अब हम अपने इस ग्रह

से पोलियो को समाप्त करने के समीप खड़े हैं। अमेरिकी इतिहास में *मार्च ऑफ डाइम्स* एक अद्वितीय स्थान रखता है। पोलियो के विरुद्ध टीके विकसित करने के लिए गंभीरता से काम करने के दौरान पोलियो से पीड़ित लोगों की देखभाल करने का यह प्रयास वृहत् पैमाने पर राष्ट्रीय स्तर के प्रथम जैव–चिकित्सकीय पहल का प्रतिनिधित्व करता है, जिसको एक धर्मार्थ संस्था द्वारा नेतृत्व प्रदान किया जाता है। यह स्वयंसेवक आंदोलन को अमेरिकी जीवन के ताने–बाने का एक अहम हिस्सा बनाने में भी सहायता करता है। मार्च ऑफ डाइम्स निवेश विज्ञान के अन्य अनुसंधान क्षेत्रों में भी किये गये हैं, जिनमें 11 नोबेल पुरस्कार सम्मानित वैज्ञानिकों की सहायता भी शामिल है जिनके मौलिक कार्य मार्च ऑफ डाइम्स के अनुदान द्वारा समर्थित थे।

जार्जिया के गर्म पानी वाले झरने पोलियो चिकित्सा के उपचार के लिए जाने जाते थे

आरंभिक वर्ष

पोलियोवायरस के प्रारंभिक आधुनिक नैदानिक विवरण 1795 में इंग्लैंड में, 1813 में इटली में, और 1823 में भारत में प्राप्त किये गये। प्रथम दस्तावेजीकृत पोलियो प्रकोप उत्तरी यूरोप में, विशेषकर 1868 में नार्वे में और 1880 के दशक में स्वीडन में घटित हुआ। आरंभिक अध्ययन सुझाव देते हैं कि यह रोग निश्चित रूप से संक्रामक है, जिसकी शुरुआत संक्रामक पूर्व–घातक अवस्था से लेकर सामान्य फ्लू जैसे लक्षणों से होती है।

स्वीडन में 1905 के दौरान फैली पोलियो महामारी के समय, आइवर विकमैन पहले व्यक्ति थे जिन्होंने पोलियो के संक्रामक प्रकृति को स्पष्ट रूप से दिखाया। इसके तुरंत बाद वियना में 1908 में कार्ल लैंडस्टीनर द्वारा प्रयोगशालीय बंदरों में पोलियो वायरस को पृथक् किया गया। पोलियो वायरस द्वारा फैलाये गये रोग की प्रकृति को **शिशु अंगघात** कहा गया। लैंडस्टीनर और उनके सहयोगी ई. पॉपर ने एक 9 वर्षीय बालक रोगी के मेरुरज्जु से निलंबन सूत्र निकालकर खरगोशों, गीया सूअरों, चूहों और बंदरों में प्रवेश कराकर प्रयोग किये। केवल बंदरों ने ही इस रोग के संकेत दिये। उन्होंने यह भी अवलोकन किया कि बंदरों में कोई जीवाणु (बैक्टीरिया) नहीं पाया गया तथा उनके तंत्रिका तंत्र रेबीज के सदृश्य बदलते हैं। अपने निष्कर्षों पर आधारित लैंडस्टीनर ने सुझाव दिया कि इस रोग का एक *'विषाणुक कारण विज्ञान'* है। उसके बाद उन्होंने पोलियोमाइलिटिस से ग्रस्त एक 13 वर्षीय बच्चे के मेरुरज्जु के अंशों को पेरिस स्थित पाश्चर इंस्टीट्यूट के पास भेजा। पोलियोवायरस को एक छानने योग्य वायरस के रूप में देखा गया जो तंत्रिकाओं के एक छोर से दूसरे छोर तक फैलता है तथा बंदरों के बीच हस्तांतरित होता है।

पोलियोमाइलिटिस के कारक वायरस की खोज को शीघ्र ही स्वीकार कर लिया गया। 1909–10 तक पोलियो अनुसंधान का मुख्य फोकस चिकित्सा अनुसंधान के लिए प्रसिद्ध न्यूयार्क सिटी स्थित रॉकफेलर इंस्टीट्यूट में स्थानांतरित हो गया था। इस इंस्टीट्यूट में पोलियो अनुसंधान का नेतृत्व डॉ. सिमोन फ्लेक्सनर एवं उनके दल द्वारा किया गया। 1910 पोलियो के लिए एक उल्लेखनीय वर्ष था; इस वर्ष **कांग्रेस ऑफ अमेरिकन फिजिसियंस एंड सर्जन्स** ने अन्य किसी भी विषय की तुलना में पोलियो पर ज्यादा ध्यान केन्द्रित किया। फ्लेक्सनर की प्रयोगशाला के मुताबिक पोलियो वायरस सिर्फ तंत्रिका तंत्र को संक्रमित करता है, किन्तु यह गैर–तंत्रिका स्थलों, विशेषकर प्रत्यक्ष टीकाकरण के बाद ऊपरी नासिका क्षेत्र, में भी मौजूद रहता है। इस प्रकार पोलियो संक्रमित सूक्ष्म बूंदों द्वारा फैले वायरस से तथा उसके बाद नाक में तंत्रिकाओं के माध्यम से प्रत्यक्ष तंत्रिका तंत्र आक्रमण द्वारा होने वाला एक श्वसन संक्रमण प्रतीत होता है। 1930 के दशक तक नासिका–तंत्रिका तंत्र मॉडल का प्रभुत्व रहा कि कैसे पोलियो तक पहुंचा जाये। अनुसंधान के अगले चरण के दौरान सर्वप्रथम इस प्रश्न का उत्तर दिया जाता था कि क्या पोलियो महज एक विशिष्ट वायरस के कारण होता है या वायरस के एक से ज्यादा प्रकार हैं। इस प्रश्न पर कई वर्ष तक अनुसंधान हुए। किन्तु अंततः यह सिद्ध हो गया कि इस रोग के कारक वायरस के तीन प्रकार या सिर्फ तीन उपजातियां हैं। इसने आशान्वित किया कि पोलियो के निवारण के लिए टीके का उत्पादन किया जा सकता है।

पोलियो के टीकों के विकास के लिए किये गये आरंभिक प्रयास

पोलियो टीके के विकास की पहली बड़ी आशा 1934–35 में दिखी। डॉ. मौरिस ब्रॉडी ने एक शिथिल पोलियो टीका विकसित किया और उसके शीघ्र ही बाद डॉ. जॉन कोल्मर के नेतृत्व में विरोधी दल ने पोलियो टीके के एक तनु रूप का विकास किया। हालांकि यह सफलता क्षणिक ही साबित हुई। संयुक्त राज्य अमेरिका के कुछ भागों में जल्दबाजी में किये गये इस्तेमाल निष्प्रभावी साबित हुए और कई रोगियों के लिए मृत्यु का कारण बने। इस अनुभव ने आगामी 20 वर्षों तक कोई दूसरा पोलियो टीका विकसित करने का प्रयास करने के प्रति पोलियो अनुसंधानकर्त्ता झिझकते रहे।

पोलियो टीकों के इतिहास में एक महत्त्वपूर्ण नया युग तब शुरू हुआ जब साइंस पत्रिका में एक लघु शोधपत्र प्रकाशित हुआ। बोस्टन चिल्ड्रेन्स हॉस्पीटल और हार्वर्ड मेडिकल स्कूल के जे.एफ. एन्डर्स, टी. एच. वेलर एवं एफ.सी. रॉबिन्स ने उन्हें नोबेल पुरस्कार दिलाने वाली इस रिपोर्ट को प्रकाशित किया। उन लोगों को विभिन्न प्रकार के ऊतकों के संवर्धन में पोलियोमाइलिटिस वायरसों की वृद्धि करने की क्षमता की खोज के लिए 1954 में शरीर क्रियाविज्ञान या चिकित्सा के लिए नोबेल पुरस्कार से सम्मानित किया गया। इस शोधपत्र ने गैर–तंत्रिकीय ऊतकों का इस्तेमाल कर टेस्ट ट्यूब में पोलियोवायरस के सम्वर्धन में दीर्घ–स्थायी समस्या के समाधान के तरीकों का वर्णन किया। अंततः इस खोज ने बंदरों या यहां तक कि चूहों के टीकाकरण की खर्चीली प्रक्रिया से अलग पोलियो वायरस की उपस्थिति को दिखाने वाली विधि प्रदान की। इस ऐतिहासिक खोज ने अंततः एक व्यावहारिक पोलियो टीके के विकास के लिए रास्ता खोल दिया।

1951 में पोलियो को निष्क्रिय असंक्राम्यता प्रदान करने की विधि की कोशिश सबसे पहले उत्तरी अमेरिका में की गयी। इस प्रयोग के चरण के

दौरान यह खोजा गया कि रक्तप्रवाह में प्रवेश करने वाली वायरस की छोटी मात्रा से पोलियोवायरस प्रतिजैविकों की सूक्ष्म मात्रा द्वारा बचा जा सकता है। इस प्रकार गामा ग्लोब्यूलिन में अंतर्विष्ट पोलियो वायरस प्रतिजैविक का इस्तेमाल एक सीमित समयावधि के लिए पोलियो वायरस के संक्रमण को निष्क्रिय करने हेतु किया जा सकता है। बाद के अध्ययनों से यह पता चला कि रोगी के रक्त में पोलियो के विरुद्ध प्रतिजैविकों का निर्माण होता है। इसलिए वायरस के एक प्रकार द्वारा पीड़ित एक व्यक्ति बाद में उस प्रकार के विरुद्ध प्रतिरक्षित होता है। क्रमशः अधिक कार्य करने के बाद यह स्पष्ट हो गया कि पोलियो की रोकथाम के लिए एक व्यावहारिक टीका उत्पादित किया जा सकता है।

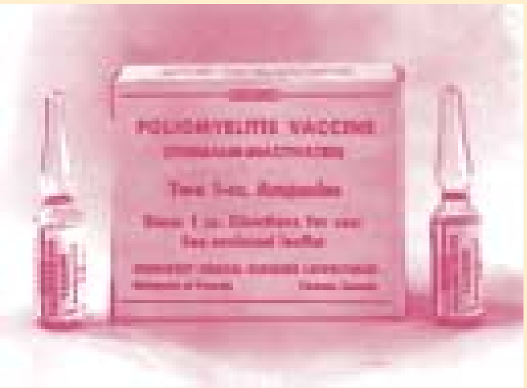

कोनट मेडिकल रिसर्च लेब्रोटरी, कनाडा द्वारा तैयार पोलियो टीका

सॉल्क टीके की कहानी

यूनिवर्सिटी ऑफ पिट्सबर्ग में कार्य करने के दौरान डॉ. जोनास सॉल्क ने पोलियोवायरस के 196 ज्ञात उपजातियों को प्रतिरक्षण रूप से तीन भिन्न प्रकारों में वर्गीकृत करने के एक प्रमुख प्रयास को अपने हाथ में लिया। प्रयोगों की एक शृंखला के उपरांत उन्होंने पोलियोवायरस को निम्न तीन उपजातियों में वर्गीकृत कियाः प्रकार–I (ब्रुनहाइड, 161 उपजातियां), प्रकार–II (लांसिंग, 20 उपजातियां) तथा प्रकार–III (लियोन, 15 उपजातियां)। जोनास एडवर्ड सॉल्क (1914–95) एक अमेरिकी चिकित्सक एवं सूक्ष्म जीव विज्ञानी थे। उन्होंने यूनिवर्सिटी ऑफ मिशीगन में इन्फ्लूएंजा वायरस पर अनुसंधान किया। 1946 में वे मिशीगन में महामारी विज्ञान के सहायक प्रोफेसर बने। 1951 तक निष्क्रिय इन्फ्लूएंजा टीका विकसित करने के उनके आरंभिक कार्य तथा पोलियोवायरस टाइपिंग परियोजना संबंधी उनके अनुभव तथा बंदरों में पोलियो वायरस प्रतिरक्षण पर अध्ययन करने वाले दूसरों के कार्य के आधार पर सॉल्क ने यह सुझाव दिया कि एक निष्क्रिय पोलियो टीका मानव में सक्रिय प्रतिरक्षण को उत्तेजित कर सकता है। उन्होंने बंदर के ऊतक में अलग–अलग पोलियो वायरस की तीन उपजातियों को संवर्धित कर पोलियो टीके का विकास किया। उस वायरस को ऊतक से अलग किया गया, एक सप्ताह के लिए भंडारित किया गया, तथा फॉर्माल्डिहाइड से मार डाला गया। उसके बाद उन्होंने यह निश्चित करने के लिए कई परीक्षण किये कि वह वायरस मर गया है या नहीं। उन्होंने यह सिद्ध कर दिया कि मृत वायरस टीके के साथ तीन या चार इंजेक्शनों की एक शृंखला पोलियो प्रतिरक्षण प्रदान करने के लिए आवश्यक है। पोलियो में विशेष रुचि रखने वाले इंग्लैण्ड के एक अग्रणी वायरस विज्ञानी डॉ. एन्ड्रयू जे. रोड्स के कार्य सॉल्क के लिए अपने टीके के विकास में विशेष महत्त्व के थे। 1951 तक रोड्स अनुसंधान दल विभिन्न प्रकार के ऊतकों में पोलियोवायरस के सभी तीन प्रकारों को विकसित करने में सक्षम था। सॉल्क ने पोलियो टीके के विकास में विभिन्न ऊतकों में पोलियो वायरस को विकसित करने की विधि का इस्तेमाल किया। इस टीके को **'सॉल्क टीके'** के नाम से जाना गया। सॉल्क ने लोगों के बीच विश्वास का माहौल पैदा करने के लिए सबसे पहले स्वयं और अपने पुत्र सहित अपने परिवार को इस टीके का इंजेक्शन दिया। उसके बाद उन्होंने पिट्सबर्ग के समीप अपंग बच्चों के एक संस्थान के निवासियों को टीके दिलाने का प्रबंध किया। इस परीक्षण के उत्साहजनक परिणाम मार्च 1953 में प्रकाशित किये गये। इसी समय के आसपास डॉ. लियोन फैरेल ने बड़े बोतलों में पोलियो वायरस द्रवों की थोक मात्राओं को उत्पादित करने के लिए **'टोरोन्टो तकनीक'** का विकास किया। इस विकास ने सॉल्क टीकों के वृहत् पैमाने पर उत्पादन का रास्ता साफ किया।

सॉल्क के परिणामों से उत्साहित होकर जुलाई 1953 में नेशनल फाउंडेशन फॉर इंफेन्टाइल पेरालिसिस ने संयुक्त राज्य अमेरिका में एक अभूतपूर्व पोलियो टीका परीक्षण क्षेत्र के लिए आवश्यक सभी पोलियो वायरस द्रवों को उपलब्ध कराने हेतु कनॉट मेडिकल रिसर्च लेबोरेट्रीज (अब एवेन्टिस पाश्चर लिमिटेड) को कहा। कनॉट द्वारा उत्पादित करीब 3,000 लीटर थोक पोलियो वायरस द्रवों को निष्क्रिय करने और अंतिम टीके के रूप में संवर्धित करने के लिए संयुक्त राज्य अमेरिका की दो प्रमुख दवा कंपनियों, पार्क डेविस और एली लिली के पास जहाज से भेजा गया। क्षेत्र परीक्षण के लिए जारी करने के पहले टीके के प्रत्येक बैच को एक परीक्षण शृंखला से गुजरना पड़ा,। सबसे पहले कनॉट द्वारा, उसके बाद प्रत्येक कंपनी, सॉल्क की प्रयोगशाला और अमेरिकी सरकार द्वारा परीक्षण किये गये। गहन प्रचार के बीच में, पहले बच्चे को यह नया टीका 26 अप्रैल, 1954 को दिया गया। क्षेत्र परीक्षण, इतिहास में सबसे बड़े चिकित्सा प्रयोगों में से एक था तथा इसमें 5–8 वर्ष के आयु वर्ग के लगभग 800,000 बच्चों को शामिल किया गया। उनको या तो टीका दिया गया या उनकी सामान्यतः जांच की गयी कि वे पोलियो से संक्रमित हैं या नहीं। परिणाम नाटकीय थे। टीकाकृत परीक्षण वर्ग में पोलियो के रोगी आश्चर्यजनक रूप से कम हो गये। 1955 में, सरकार ने शीघ्र ही अमेरिका के बच्चों के लिए टीकों के वितरण की अनुमति प्रदान कर दी। 12 अप्रैल, 1955 को उच्च अनुमानित चिकित्सकीय परीक्षण परिणाम एक बड़े मीडिया इवेंट में बदल गये, जो चिकित्सा के इतिहास में संभवतः सबसे बड़ा था। *'सॉल्क का टीका काम कर गया'* अखबार की सुर्खियों में छाया रहा। परीक्षण निदेशक डॉ. थॉमस फ्रैन्सिस ने रिपोर्ट दी कि यह टीका घातत पोलियो के विरुद्ध 60 से 80 प्रतिशत प्रभावी था। उन्होंने और सॉल्क ने इस बात पर जोर दिया कि यह टीका अच्छा था, लेकिन पूर्ण नहीं।

हालांकि यह सफलता बहुत दीर्घजीवी साबित नहीं हुई। अचानक, 25 अप्रैल, 1955 को सॉल्क टीके का उल्लासोन्माद छिन्न–भिन्न हो गया, जब कैलिफोर्निया में क्यूटर लेबोरेट्रीज द्वारा निर्मित टीके से संबंधित पोलियो के कुल 205 मामलों में से एक का पता चला। समस्या कुछ वायरस कणों के अपूर्ण निष्क्रियकरण से संबंधित थी जिसे पता लगाया गया और शीघ्र ही उसे ठीक कर लिया गया। उसके बाद से यह टीका 70–90 प्रतिशत सुरक्षा दर के साथ उच्च प्रभावकारी बना हुआ है। सॉल्क टीके के तहत दो अंतरपेशीय इंजेक्शन एक–एक महीने के अंतर पर दिये जाते हैं और उसके बाद 5 वर्ष तक बूस्टर डोज प्रदान किये जाते हैं।

एक सजीव मौखिक पोलियो टीके का विकास

1957 में मृत सॉल्क टीके को परिवर्द्धित करने के प्रयास के तहत, अल्बर्ट ब्रुस साबिन ने टीके के सजीव, मौखिक प्रकार के परीक्षण की शुरुआत की, जिसमें वायरस का संक्रमणकारी भाग निष्क्रिय (तनु) होता था, मृत नहीं। अमेरिकी चिकित्सक एवं सूक्ष्मजीव विज्ञानी साबिन (1906–63)

का रूस में जन्म हुआ था। वे 1921 में संयुक्त राज्य अमेरिका चले गये और 1930 में वहां की नागरिकता प्राप्त कर ली। साबिन ने न्यूयार्क यूनिवर्सिटी से 1928 में स्नातक (बी.एस.) और 1931 में एम.एस. की डिग्री प्राप्त की। 1939 में यूनिवर्सिटी ऑफ सिनसिनाटी के कॉलेज ऑफ मेडिसिन में नियुक्ति प्राप्त करने के पूर्व उन्होंने कई संगठनों के लिए चिकित्सीय अनुसंधान संचालित किये। इसके बाद वे 1946 में बाल चिकित्सा संबंधी अनुसंधान के प्रोफेसर बनाये गये। उन्होंने विषाणुजनित एवं अन्य संक्रमणकारी रोगों से संबंधित अनुसंधान संचालित किये तथा 1959 में पोलियोमाइलिटिस के विरुद्ध टीकाकरण के लिए एक सजीव मौखिक पोलियो टीके (ओपीवी) का विकास किया। साबिन ने एक त्रिसंयोजक ओपीवी का इस्तेमाल किया, जिसमें 10:1:3 अनुपात में पोलियो वायरस के सभी तीन सीरमप्रकारों की सजीव तनु उपजातियां शामिल होती हैं। बंदर के गुर्दे, वेरो, या मानव द्विगुणित तंतु–विस्फोट ऊतक संवर्धन जो उत्परिवर्तनों को एकत्रित करने की अनुमति देता है, में धारावाहिक संक्रमण द्वारा वायरसों को तनु किया जाता था। अंततः यह एक तनु वायरस में परिवर्तित होता था जिसे रोगी को मुंह में दिया जा सका। कमजोर वायरस सामान्यतः आंत में अपनी प्रतिकृति बनाते हैं, लेकिन केन्द्रीय तंत्रिका तंत्र पर आक्रमण करने के लिए पर्याप्त रूप से विकसित नहीं हो पाते हैं। इस टीके की आपूर्ति 0.5 मिली खुराक वाले एक प्लास्टिक डिस्पेन्सर में की जाती है। इस टीके में स्ट्रेप्टोमाइसीन और नियोमाइसीन की सूक्ष्म मात्रा शामिल होती है। टीके का सामर्थ्य मोलर मैग्नीशियम क्लोराइड या सूक्रोज के साथ स्थायी होता है। ओपीवी जठरांत्र संबंधी मार्ग और लसिका गांठों में भी प्रतिकृति बनाता है जो आंत की सफाई करता है। ओपीवी दो भिन्न प्रतिरक्षा अनुक्रियाओं को उत्पन्न करता है। प्रथमतः यह ह्यूमर संबंधी प्रतिरक्षा अनुक्रिया को क्रियाशील बनाता है, सभी तीन पोलियो सीरमप्रकारों के लिए रक्त में सीरम को निष्क्रिय करने वाले प्रतिजैविकों के उत्पादन को प्रोत्साहित करता है। यह व्यवस्थित अनुक्रिया दीर्घावधिक होती है तथा तंत्रिका तंत्र तक पोलियोवायरस के फैलने को रोकने में सहायता करती है। ओपीवी म्यूकोसल प्रतिरक्षा अनुक्रिया भी उत्पन्न करता है, जो जठरांत्र संबंधी मार्ग के उपकला संबंधी संरेखण में इंटरफेरॉन और वायरस विशेष इम्यूनोग्लोबुलिन ए (आईजीए) प्रतिजैविक से मिलकर बनता है। केवल नरवानर ही पोलियोवायरस के सभी तीनों सीरमप्रकारों के प्रति अति संवेदनशील होते हैं, इसीलिए मौखिक पोलियोवायरस टीके (ओपीवी) की सुरक्षा और इसकी संगतता की मंकी न्यूरोविरुलेन्स टेस्ट (एमएनवीटी) के अंतर्गत जांच की जाती है।

'मार्च ऑफ डाइम्स' के पक्ष में जारी एक पोस्टर

साबिन का टीका मुंह से लिया जा सकता है और यह मृत वायरस टीके की तुलना में अधिक प्रतिरक्षा प्रदान करता है। मृत–वायरस टीका केवल पक्षाघात के विरुद्ध सुरक्षा मुहैया कर सकता है, जबकि साबिन का सजीव टीका पक्षाघात और संक्रमण दोनों से सुरक्षा प्रदान कर सकता है। यह टीका इस्तेमाल के लिए 1963 से उपलब्ध है। साबिन मौखिक टीका दो वर्ष की आयु में 3 खुराकों में दिया जाता है, और एक बूस्टर खुराक तब दिया जाता है जब बच्चा स्कूल जाना प्रारंभ करता है। बूस्टर खुराक तब तक नहीं दिये जाते जब तक कि रोगी पोलियो से ग्रसित न हो जाये या फिर उसको महामारी वाले क्षेत्र की यात्रा न करनी हो। ओपीवी, इंजेक्शन के बजाय मुंह से दिया जाता है। इसके प्रशासन को किसी प्रशिक्षित स्वास्थ्य कर्मी और रोगाणुरहित इंजेक्शन उपकरण की आवश्यकता नहीं होती। यह टीका तुलनात्मक रूप से कम खर्चीला है तथा राष्ट्रीय टीकाकरण दिवसों के दौरान टीके की व्यापक खरीद की सुविधा प्रदान करता है। दीर्घजीवी प्रतिरक्षा तथा पाचन मार्ग के पुनर्संक्रमण से बचाव एक सजीव, मौखिक टीके के अन्य लाभ हैं। ओपीवी की एकमात्र खुराक लगभग 50 प्रतिशत ग्रहणकर्त्ताओं में सभी तीनों टीका वायरसों के विरुद्ध प्रतिरक्षण पैदा करती है। तीन खुराकें करीब 95 प्रतिशत से अधिक ग्रहणकर्त्ताओं में सभी तीन पोलियोवायरस प्रकारों से सुरक्षा मुहैया कराती हैं। मौखिक पोलियोवायरस टीके से प्राप्त प्रतिरक्षण संभवतः जीवनपर्यंत मौजूद रहता है। म्यूकोसल प्रतिरक्षण को प्रेरित करने की ओपीवी की क्षमता जंगली पोलियोवायरस सम्प्रेषण को रोकने में किये गये ओपीवी जन अभियानों की सफलता के लिए उत्तरदायी है। इस प्रकार, ओपीवी पोलियो अन्मूलन के लिए एक पसंदीदा टीका बन गया है। ओपीवी आंत संबंधी प्रतिरक्षण इस आशंका को कम करता है कि एक टीका ग्रहण करने वाला व्यक्ति किसी पोलियो पीड़ित देश की यात्रा के दौरान जंगली वायरस से संक्रमित हो जायेगा। भारत में राष्ट्रीय टीकाकरण दिवस अभियानों के दौरान साबिन के मौखिक पोलियो टीकों का अब इस्तेमाल किया जा रहा है।

विश्व स्वास्थ्य संगठन और पोलियो का उन्मूलन

पोलियो टीकों की खोज एवं इस्तेमाल ने अमेरिका से पोलियो को समाप्त कर दिया है। 1960 में अमेरिका में घातज पोलियो के 2,525 मामले थे। 1965 तक यह संख्या 61 रह गयी। 1980 और 1990 के बीच ऐसे मामलों की संख्या प्रतिवर्ष औसतन 8 रह गयी और उनमें से अधिकांश टीकाकरण द्वारा उत्पन्न थे। 1979 से संयुक्त राज्य अमेरिका में जंगली वायरसों की वजह से पोलियो का एक भी मामला नहीं पाया गया, प्रति वर्ष एक–दो दुर्लभ मामले उन लोगों से पाये जाते हैं जो वायरस को दूसरे देश से लेकर आते हैं। 1994 में पूरे अमेरिका से पोलियो के उन्मूलन की घोषणा कर दी गयी। जैसे ही साबिन एवं सॉल्क टीके प्रभावकारी साबित हुए, अमेरिका ही नहीं वरन् अधिकांश औद्योगिक विश्व से इस रोग का उन्मूलन तेजी से हुआ। इसका आर्थिक प्रभाव बहुत बड़ा है; यह अनुमान लगाया गया है कि पोलियो टीका अपने विकास की लागत लगभग प्रत्येक तीन सप्ताह के बाद वसूल लेता है। सिर्फ इस एकमात्र सफलता से संयुक्त राज्य अमेरिका को कई खरब डॉलर का लाभ हुआ। सामाजिक प्रभाव भी उल्लेखनीय रहा है। कम से कम विकसित विश्व में बच्चों एवं माता–पिता के दुःस्वप्नों से पोलियो पीडितों की बैसाखियां, व्हीलचेयर्स और लोहे के बिस्तर अंततः विलुप्त हो गये हैं।

विकसित देशों में पोलियो टीकों के परिणाम ने 1988 में विश्व स्वास्थ्य संगठन को वर्ष 2000 तक पूरे विश्व से पोलियोमाइलिटिस के उन्मूलन का लक्ष्य निर्धारित करने के लिए प्रोत्साहित किया। परिणाम काफी उत्साहवर्द्धक रहे। मात्र एक दशक में विश्वभर में पोलियो मामलों की संख्या नाटकीय रूप से कम हो गयी। डब्ल्यूएचओ के अनुसार, 1988 में अनुमानतः 350,000 मामले थे, जिसमें से मात्र 10 प्रतिशत वास्तव में रिपोर्ट किये गये थे। 2001 के अंत तक मामलों की संख्या कम होकर 537 रह गयी।

यद्यपि भारत और नाइजीरिया में पोलियो के प्रकोप के कारण 2002 के दौरान रिपोर्टेड मामलों की संख्या बढ़ गयी, इनमें से अधिकांश मामले छोड़ दिये गये क्षेत्रों में ही केन्द्रित थे, फलतः एक पोलियो मुक्त विश्व की आशान्वित तस्वीर उभरती है।

भारत में पोलियो उन्मूलन के प्रयास

वर्ष 1988 में ही डब्ल्यूएचओ के प्रस्ताव का उसी प्रभावशीलता से समर्थन कर भारत आधिकारिक रूप से पोलियो के उन्मूलन के लिए कृतसंकल्प है। भारत में विश्व के किसी भी देश की तुलना में पोलियो के अधिक मामले हैं। यह अनुमान लगाया गया था कि भारतीय स्वास्थ्य देखभाल कर्मियों ने सरकार को पोलियो के 24,000 मामलों की आधिकारिक सूचना दी थी। किन्तु वास्तव में, संभवतः इससे 10 गुना अधिक संख्या रही होगी जिनकी सूचना नहीं दी गयी। भारत के शहरों, कस्बों और गांवों में विकृत हाथ और पैर वाले बच्चों एवं युवाओं के नजारे आम थे, तथा पोलियोवायरस संक्रमण के लिए प्रमुख जोखिम कारकों में से कुछ– भीड़–भाड़, गरीबी एवं खराब स्वच्छता प्रबंध– भारत में इतनी डिग्री में विद्यमान है जितनी अधिकांश देशों में देखने को नहीं मिलती।

साल्क पोलियो टीका 12 अप्रैल 1955 को प्रभावशाली घोषित किया गया था

पोलियो उन्मूलन की प्रगति सतत् बनी हुई है। डब्ल्यूएचओ, यूनिसेफ और रोटरी इंटरनेशनल सहित प्रमुख सहभागियों के साथ भारत सरकार एक व्यापक प्रयास की अगुआई कर रही है। पोलियो पर आरंभिक आक्रमण 1985 में सार्वभौमिक टीकाकरण के प्रावधान के साथ हुआ। सार्वभौमिक टीकाकरण कार्यक्रम (यूआईपी) के अंतर्गत इतने भारतीय बच्चों को मौखिक पोलियो टीके (ओपीवी) दिये गये जितने इतिहास में कभी नहीं दिये गये। रिपोर्टेड पोलियो मामलों की संख्या 1988–89 के 24,000 से अधिक से घटकर 1993–94 में 5,000 से भी कम रह गयी। हालांकि यह प्रयास भी उत्साहवर्द्धक था, इसके बावजूद भारत सरकार ने शीघ्र ही कदम बढ़ाते हुए पोलियो उन्मूलन प्रयास को और तीव्र करने की आवश्यकता महसूस की तथा पल्स पोलियो टीकाकरण (पीपीआई) रणनीति का विकास किया। मुख्य उद्देश्य नियमित टीकाकरण गतिविधियों के पूरक के रूप में सार्वजनिक टीकाकरण अभियानों का इस्तेमाल करना था। दिल्ली प्रांत 1994 में पीपीआई घटक को अपनाने वाला पहला क्षेत्र था। राष्ट्रीय टीकाकरण दिवस (एनआईडी) कार्यक्रम का पहला दौर 1995 के उत्तरार्द्ध में आयोजित किया गया, जिसके बाद दूसरा दौर 1996 के आरंभ में सम्पन्न हुआ। एनआईडी समर्थित बूथों (स्थायी स्थल) पर पांच वर्ष के कम आयु के बच्चों को दो मौखिक पोलियो बूंद लेने के लिए आमंत्रित किया जाता था। प्रथम एनआईडी कार्यक्रम के दौरान राष्ट्रीय स्तर पर 500,000 से अधिक बूथ स्थापित किये गये, तथा सिर्फ एक दिन में कुल 87 मिलियन बच्चों ने मौखिक पोलियो टीके ग्रहण किये। इस गतिविधि के लिए इस्तेमाल की गयी सचलता (मोबिलाइजेशन) का प्रसार एवं तीव्रता भारत, और संभवतः विश्व, की स्वास्थ्य पहल के इतिहास में अभूतपूर्व थी। इस उल्लेखनीय उपलब्धि को समझने के लिए, इस बड़ी चुनौती से निपटने हेतु किये गये प्रयासों के स्तर को समझना महत्त्वपूर्ण है। साथ ही, जैसे ही एनआईडी कार्यक्रमों की पहल की गयी, सरकार को यह स्पष्ट हो गया कि पोलियो मामलों की बेहतर सूचना पोलियो उन्मूलन के कार्य को पूरा करने के लिए जरूरी है। भारत सरकार और डब्ल्यूएचओ ने भारत में पोलियो मामलों से संबंधित यथार्थ एवं तीव्र निगरानी सूचना प्रदान करने के लिए **'राष्ट्रीय पोलियो निगरानी परियोजना' (एमपीएसपी)** नामक एक संयुक्त इकाई विकसित की। संक्रमण के स्रोत का पता लगाने और संक्रमित क्षेत्र में पोलियो टीकों के अधिकाधिक खुराक से पाट देने के लिए अब मामलों का एक व्यवस्थित पाद्धतिक चिह्निकरण मौजूद है। 1997 से शुरू, पोलियो निगरानी गतिविधियों को समायोजित करने के लिए पूरे भारत में 200 से अधिक निगरानी चिकित्सा अधिकारी एनपीएसपी को समर्थन प्रदान कर रहे हैं। एनपीएसपी नेटवर्क के अलावा 9 उच्च प्रशिक्षित भारतीय अनुसंधान केन्द्रों का एक क्षेत्रीय प्रयोगशाला नेटवर्क रोगियों से प्राप्त नमूनों के तीव्र एवं सटीक विश्लेषण उपलब्ध कराते हैं।

निष्कर्ष

मानव आंत में रहने वाले पोलियोवायरस मल–मूत्र के माध्यम से पर्यावरण में उत्सर्जित होते हैं तथा उत्सर्जित पदार्थों के सम्पर्क द्वारा फैलते हैं। यह रोग मुख्यतः बच्चों पर आक्रमण करता है, अंगों को अशक्त बना देता है, और कभी–कभी प्राणघातक होता है। पेयजल को स्वच्छ किये बिना अस्वस्थकर स्थितियों में रहने वाले बच्चे इससे विशेषकर आघात योग्य होते हैं। इसीलिए शून्य से पांच वर्ष के आयु वर्ग के बच्चों के समकालिक सार्वजनिक टीकाकरण, जिसको राष्ट्रीय स्तर पर 4 जनवरी, 2004 को शुरू किया गया, के माध्यम से वायरस पर बमबारी को शून्य घटना सुनिश्चित करने के लिए सर्वोत्तम तरीका माना जाता है। भारत में ऐसा 1996 से किया गया, लेकिन 2002 में सुनियोजित टीकाकरण कार्यक्रमों में कटौती उस वर्ष उत्तर प्रदेश में पोलियो के पुनरुत्थान के पीछे का मुख्य कारण थी। इसने एक पोलियो मुक्त भारत और एक पोलियो मुक्त विश्व के लक्ष्य को 2005 से पीछे धकेलकर 2007 तक कर दिया। इस वर्ष ऐसी सूचना है कि सरकार सामान्यतः दो वार्षिक के बजाय पांच राष्ट्रीय टीकाकरण दिवस आयोजित करने जा रही है। इस प्रकार के अभियान में धन खर्च होने के बावजूद, यह फैसला लक्ष्य को हासिल करने के लिए सामयिक एवं पर्याप्त होगा। सम्पूर्ण पोलियो उन्मूलन के लाभ, जिसमें रोग से लड़ने पर होने वाले अपार राष्ट्रीय व्यय की बचत भी शामिल होगी, व्यय से कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। अधिक प्रभावकारी होने के लिए राष्ट्रीय टीकाकरण दिवस कार्यक्रम के अंतर्गत पांच वर्ष की आयु के अंदर के भारत के 165 मिलियन बच्चों को अधिक से अधिक अवश्य लाना होगा। मौखिक पोलियो टीके के अनुभव किये गये इतर प्रभावों के बारे में फैले अंधविश्वास एवं भ्रांतियां अब भी कई माता–पिता को अपने बच्चों को टीका दिलाने से रोकती हैं। जन संचार के माध्यम से ब्रांड एम्बेस्डर्स का इस्तेमाल कर, जैसा कि फिल्म

सितारे अमिताभ बच्चन और ऐश्वर्य राय को शामिल किया गया है, बड़े पैमाने पर जन–जागरण अभियानों को पोलियो उन्मूलन प्रयासों की प्रभावोत्पादकता के लिए जारी रखना चाहिए। जागरुकता निर्माण हेतु दरवाजे–दरवाजे अभियान में रोटरी जैसे ऐच्छिक संगठनों की संलग्नता से काफी सहायता मिली है, हालांकि रोग और उसके टीके के बारे में लोगों को शिक्षित करना सरकार के लिए अब भी एक प्रमुख चुनौती है।

साथ ही साथ, सरकार को यह भी अवश्य सुनिश्चित करना चाहिए कि नियोजित टीकाकरण पर दिया जा रहा बल नियमित टीकाकरण से ध्यान हटा न दे जिसके माध्यम से नवजात बच्चों को शून्य से तीन महीने तक मौखिक पोलियो टीके की चार खुराक दिये जाते हैं। भारत में प्रतिवर्ष जन्म लेने वाले 15.5 मिलियन बच्चों के लिए नियमित टीकाकरण प्रतिरक्षण में अंतराल बढ़ने से रोकने का एकमात्र तरीका है। जैसा कि तमिलनाडु ने दिखाया है, बहुत कुछ निगरानी पर भी निर्भर करता है। तमिलनाडु में दो मामलों के आरंभ में ही पता चल जाने की वजह से ही स्वास्थ्य अधिकारी उन दो क्षेत्रों में सभी बच्चों को शीघ्र ही समय पर टीका लगवाने में सक्षम हो पाये। केन्द्रीय स्वास्थ्य मंत्री सुषमा स्वराज 2004 में भारत में पोलियो की शून्य घटनाएं चाहती हैं, ताकि देश को तीन वर्ष की प्रतीक्षा अवधि के बाद पोलियो मुक्त घोषित किया जा सके। यह लक्ष्य पहुंच के अंदर है। इस समय और आगे भी इस स्थिति से फिसलने की अनुमति नहीं दी जा सकती, इसके लिए पहले से ही काफी कुछ किया भी जा चुका है।

शान्तिदूत मदर टेरेसा एक भारतीय बच्चे को मौखिक पोलियो टीका देते हुए

इसलिए सरकार और इस कार्यक्रम में संलग्न अन्य एजेन्सियों को मानवीय सहयोग पर बल देना चाहिए तथा विश्व के एक सर्वाधिक निर्बल बना देने वाले इस रोग पर अंतिम प्रहार करने से अपने को वंचित नहीं करना चाहिए। उनको इस पूरे वर्ष विशेषकर उत्तर प्रदेश और बिहार जैसे राज्यों को लक्षित कर, राष्ट्रीय टीकाकरण कार्यक्रम को अधिक तीव्र करना चाहिए, जहां पोलियो के सर्वाधिक मामले प्रकाश में आये हैं। उनको कर्नाटक, पश्चिम बंगाल और आंध्र प्रदेश में पोलियो के आविर्भाव के मुद्दे पर भी ध्यान देना चाहिए। चूंकि जंगली पोलियो वायरस भारत में कहीं भी मौजूद होते हैं, इसलिए इस रोग से मुक्त माने जाने वाले क्षेत्रों में इसके फैलने का खतरा हमेशा रहेगा। चूंकि पोलियो का पूरी तरह से उन्मूलन हो गया है, इसलिए पोलियो के एक मामले का पाया जाना भी काफी है। हमें वायरस को मारने के अंतिम अवसर को ज़ाया नहीं जाने देना चाहिए, इसके पहले कि वह पुनः हमला कर दे।

अनुवादकः अनिल कुमार द्विवेदी

◆◆◆

छठवीं लहर... पृष्ठ... 2 का शेष

जोखिमग्रस्त स्तनधारियों की संख्या की दृष्टि से भारत का स्थान दुनिया में दूसरा है और जोखिमग्रस्त पक्षियों की दृष्टि से भारत का स्थान छठा है। भारत में अवैध शिकार भी एक प्रमुख खतरा है और यह बाघ जैसी प्रजातियों की संख्या में कमी आने का मुख्य कारण है।

यह सत्य है कि गरीबी, आर्थिक नीतियां, अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय कारक, नीतिगत विफलताएं, कमजोर पर्यावरण कानून या/और उनका अप्रभावी प्रवर्तन, गैर टिकाऊ विकास परियोजनाएं और संसाधनों पर स्थानीय नियंत्रण की कमी, जैव विविधता में कमी के आधारभूत कारण हैं। यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि विभिन्न प्रजातियों का विलुप्तीकरण रोकने के लिए सभी स्तरों, व्यक्तिगत से वैश्विक तक गंभीर प्रयास करने होंगे। प्रजातियों में कमी रोकने के लिए उपयुक्त रणनीति के विकास हेतु और उनकी संख्या, पर्यावास और खतरों के बारे में नियमित रूप से आंकड़े संग्रहित करने चाहिए और उन्हें विश्लेषित करना चाहिए। हमें अभी से गंभीर प्रयास शुरू कर देना चाहिए। समय बीतता चला जा रहा है।

इसमें संदेह नहीं है इसके पूर्व के विनाश के चरणों के बाद जीवन का नये रूप में पुनः कई गुना विकास हुआ। लेकिन ऐसा होने में लाखों–करोड़ों वर्ष लग जाते हैं। भू–वैज्ञानिक दृष्टि से देखें तो यह काल सेकंडों के समान ही है लेकिन जब हम मानव जीवन या मानव सभ्यता के संदर्भ में देखते हैं तो अवश्य यह काफी लंबा समय है। अधिकांश भू–वैज्ञानिकों ने यह स्वीकार किया है कि हम विनाश की उस दर के करीब हैं जो पिछले पांच महाविनाश के चरणों में देखी गयी थी। वर्तमान विनाश के लिए दोषी हम हैं। हमें छठवें विनाश की लहर के पूर्वानुमान और रोकथाम के लिए शीघ्र ही क्षमता विकसित कर लेनी चाहिए अन्यथा हम पृथ्वी को और साथ ही अपने आपको नष्ट होने से नहीं बचा पाएंगे।

☐ विनय बी. काम्बले

नेत्र, दृष्टि... *पृष्ठ... 10 का शेष*

बार विचार–विमर्श किया। उन्होंने पांडुलिपि का अध्ययन करके उसमें सुधार के लिए अनेक सुझाव भी दिए। संबंधित विषय के बारे में अनेक नेत्र विज्ञानियों एवं चिकित्सकों से विचार–विनिमय किया गया। लेखक उनके योगदान को भी कृतज्ञतापूर्वक स्वीकार करता है।

संदर्भ

1. सिस्टम आफ आपथैल्मालाजी, खंड 14 (जख्मों के बारे में) भाग दो (गैर यांत्रिक चोटें) सर स्टेवार्ट ड्यूक द्वारा संपादित – एल्डर एवं पीटर ए.मैक फौल (1972).
2. इक्लिप्स ब्लांइडनेस, पेनर एवं मैकनैर, अमेरिकन जर्नल आफ आपथैलमालाजी, 61(1966)1452.
3. फिल्टर फार व्यूइंग, डेविड जी. कोगन, आर्काईव्स आफ आपथैलमालाजी 70 (1964)138.
4. सन गेजिंग ऐज द काज आफ फेविओ मैक्युलर रेटिनाइटिस, एवाल्ड एवं रिची, अमेरिकन जर्नल आफ आपथैलमालाजी, 70 (1970) 491.
5. टोटल सोलर इक्लिप्स आफ 1999, 11 अगस्त, नासा संदर्भ प्रकाशन संख्या 1398.
6. वर्ल्ड बुक इनसाइक्लोपिडिया, खंड–5.
7. टोटल सोलर इक्लिप्स आफ अगस्त 11, 1999 भारतीय मौसम विभाग द्वारा जारी.
8. हेल्थ एण्ड एनवाईरनमेन्टल इफेक्ट्स ऑफ अल्ट्रावायलेट रेडिएशन – ए साइंटिफिक समरी ऑफ एनवाईरनमेन्ट्स हेल्थ क्राईटेरिया 160 अल्ट्रावायलेट रेडिएशन (डब्ल्यु. एच.ओ./ई.एच.जी/95.16).
9. हैज़ार्ड्स् टु आईज़ फ्राम आप्टिकल रेडिएशन http://www.hvbg.de/e/bia/fac/strahl/augen_e.pdf

◆◆◆

छुट्टियां

मौज-मस्ती के साथ सेहत भी

❑ डॉ. यतीश अग्रवाल
ई–मेल : dryatish@yahoo.com

स्कूलों–कालेजों की छुट्टियां शुरू होते ही अब समय है शहरों की मारामारी और आपाधापी की जिंदगी से दूर प्रकृति की गोद में सुकून के क्षण गुजारने का। बेफिक्री, मौज–मस्ती से भरी छुट्टियां अच्छी सेहत के लिए किसी अच्छे टॉनिक से कम नहीं है। इसका आपके मन और शरीर पर जादुई असर होता है। दिल–दिमाग और शहरी तनाव–दबाव के बुरे प्रभावों से मुक्त होकर अपनी प्राकृतिक लय में लौट आते हैं और ऊर्जा का भंडार फिर भर जाता है। यहां प्रस्तुत हैं कुछ सूत्र, जिन पर चल कर आप तन–मन को फिर से ऊर्जावान बना सकते हैं :

बस आराम करिए : छुट्टियां शब्द छुट्टी से बना है, जिसका मतलब है विश्राम, अवकाश। छुट्टियों का आनंद लेने के लिए यह मूल मंत्र याद रखना जरूरी है। सिर्फ शरीर से ही नहीं, मन से भी शहर छोड़ दीजिए। कुर्सी पर बैठकर काम करने वाला व्यक्ति हो सकता है इस दौरान अपने शरीर को हिलाना डुलाना चाहे, जबकि भागदौड़ का काम करने वाला सिर्फ आराम फरमाना चाह सकता है। छुट्टियों में अपनी दिनचर्या को पूरी तरह बदल डालिए।

थकाऊ कार्यक्रम से बचिए : छुट्टियों का उद्देश्य आराम और मनोरंजन होना चाहिए। व्यस्त और थकाऊ कार्यक्रम पूरे आनंद को किरकिरा कर सकता है। छुट्टियों को इस तरह नियोजित करें कि हर व्यक्ति आनंद और आराम महसूस करे और तनावमुक्त रहे। रोज ज्यादा घंटे यात्रा में बिताने से थकान लग सकती है और मूड–विकार भी पैदा हो सकते हैं। सीधा–सरल कार्यक्रम आपको भरपूर आनंद देगा।

गर्मी को धता बताइए : संभव हो तो सूरज उगने से पहले सुबह–सवेरे या शाम को यात्रा करिए। इस तरह दिन की गर्मी से आप बचे रहेंगे।

ढीले व आरामदायक कपड़े पहनें : छुट्टियों में कैजुअल वियर पहनें। टी शर्ट, शार्ट्स व स्पोर्ट्स शूज इसी श्रेणी में आते हैं। ढीले व आरामदायक वस्त्र सूती हों तो क्या कहने, वे त्वचा को भी सुकून प्रदान करते हैं।

चुनिंदा स्थानों पर ही खाएं : जिन स्थानों पर आपको ठहरना है या खाना है, उनका चयन सावधानी से करें। अस्वच्छ स्थानों व खाने से बचकर रहें। गर्मियों में फूड–प्वाइजनिंग तथा वाइरस संक्रमण का ज्यादा खतरा रहता है, क्योंकि इस मौसम में बीमारी पैदा करने वाले रोगाणु ज्यादा तेजी से पनपते हैं।

कुछ खाद्य पदार्थों से परहेज करें : छुट्टियों के दौरान कुछ ऐसे खाद्य–पदार्थों से परहेज करें, जिनके संक्रमित होने का ज्यादा खतरा होता है। इनमें दुग्ध उत्पाद, क्रीम, आलू, सी–फूड, अंडे की बनी चीजें, चिकन व हैम स्प्रैड, कोल्ड स्लाइस्ड मीट और दही शामिल हैं।

फर्स्ट एड किट साथ रखें : एक मजबूत फर्स्ट एड बाक्स में सभी जरूरी सामान रखें – एक पढ़ा समझा हुआ फर्स्ट एड मैनुअल, एक कैंची जिसकी तीखी नोक न हो, एक इंची फिंगर बैंडेड का एक रौल, दो इंची रौलर बैंडेड का एक रौल, एक पैकेट रोगाणुमुक्त काटन का, एक सील्ड पैक में मिलने वाले गौज स्क्वायर्स, एडिसिव प्लास्टर का एक रौल, सेवलान या डिटॉल की एक छोटी बोतल और एक क्लिनिकल थर्मामीटर।

कुछ जरूरी दवाएं भी साथ रखें : कुछ आम उपयोग की दवाएं साथ रखना हमेशा फायदेमंद होता है। मिसाल के लिस बुखार के लिए पैरासिटामोल (क्रोसिन, कैल्पाल, मैटासिन) या निमिसुलाइड टैबलेट्स। प्रोमेथेजीन (एवोमिन) उल्टी के लिए, डाइरिया के लिए नारफ्लोक्सेसिलिन तथा एलर्जी के लिए सेट्रिजाइन।

एक दिन पहले लौटें : जब छुट्टियों में बाहर निकलने का कार्यक्रम बनाएं तो छुट्टी के पहले दिन यात्रा न करें और न ही आखिरी छुट्टी के दिन घर वापस लौटें। इससे अनावश्यक दबाव–तनाव पैदा होता है जो थकान का कारण बनता है। आप कम दिनों में ज्यादा मौज–मस्ती ले सकते हैं, न कि लगातार दबाव में रहकर।

ट्रैवल सिकनेस

जब यात्रा यंत्रणा बन जाए

कुछ लोगों की हालत यात्रा के समय दयनीय हो जाती है। जैसे ही पहिया घूमना शुरू होता है, उनकी समस्याएं भी शुरू हो जाती हैं। पहले उन्हें बेचैनी महसूस होती है, शीघ्र ही वे ठंडा पसीना आना, सिर चकराना, उल्टी और पेट में अजीब सी बेचैनी–सिहरन के शिकार हो जाते हैं।

आलम यह हो जाता है कि वे सोचने लगते हैं कि काश यात्रा पर निकले होते। अगर आपके साथ भी ऐसा ही कुछ होता है तो इन आसान एहतियातों को अजमाएं :

हल्का–फुल्का खाएं : अपने पेट को आराम दें। यात्रा पर निकलने से पूर्व कम खाएं और रास्ते में भरपेट भोजन करने वे बचें। भरा पेट स्थिति ज्यादा खराब कर देता है। जब शरीर गाड़ी में हिचकोले खा रहा हो तो भरा पेट भारी होने के कारण ज्यादा हिलने डुलने लगता है।

एंटी–एमेटिक (उबकाई रोकने की दवा) गोली खाएं : यात्रा पर निकलने से आधा घंटा से एक घंटा पहले किसी भी कैमिस्ट के यहां आसानी से मिलने वाली एंटीहिस्टेमिन पिल खरीद कर खा लें जो करीब चार घंटे तक असर करती है। इन दवाइयों में प्रमुख हैं – एवोमीन, फेनार्गन, बेनाड्रिल और मिग्रिल। याद रखें कि इन दवाओं से ऊंघ आने लगती है, इसलिए, खुद गाड़ी न चलाएं।

शेष पृष्ठ... 22 पर जारी

1874 के शुक्र पारगमन का पठानी सामंत चंद्रशेखर द्वारा अवलोकन

❑ एन. रत्नाश्री
ई–मेल : rathnasree63@yahoo.co.uk

उड़ीसा के पठानी सामंत चंद्रशेखर, भारतीय सैद्धांतिक खगोलविद्या के एक प्रतिष्ठित एवं मार्मिक व्यक्तित्व हैं, जो 20वीं शताब्दी तक जीवित रहे (उनकी मृत्यु 1904 में हुई)।

सन् 1874 में हुए शुक्र के पारगमन के उनके अवलोकनों को ध्यान में रखकर वर्ष 2004 उन्हें याद करने का एक बहुत ही उपयुक्त साल है। यह न केवल उनके अवलोकनों बल्कि उनके पूर्वानुमानों को भी याद करने का वर्ष है, क्योंकि वे एक सैद्धांतिक खगालविद् थे, खगोलशास्त्र के पाश्चात्य सिद्धांतवादियों से पूरी तरह अप्रभावित थे, और कुछ हद तक अपने खगोलशास्त्रीय प्रयासों के आरंभिक चरणों के दौरान उससे अनभिज्ञ थे।

सामंत चंद्रशेखर का जन्म उड़ीसा के खांडपारा में 13 दिसम्बर, 1835 को हुआ था। उनका पूरा नाम महामहोपाध्याय चंद्रशेखर सिंह हरिचंदन मोहापात्र सामंत था, लेकिन वे पठानी सामंत के रूप में जाने जाते थे। उनके जीवनभर के खगोलशास्त्रीय प्रयास 'सिद्धांत दर्पण' में उनके द्वारा संकलित किये गये थे, जिसको कलकत्ता विश्वविद्यालय द्वारा 1899 में प्रकाशित किया गया था। सामंत चंद्रशेखर द्वारा 2500 संस्कृत श्लोकों की मूल पांडुलिपि को ताड़ के पत्तों पर उड़िया लिपि में लिखा गया था।

सामंत चंद्रशेखर ने औपचारिक विश्वविद्यालयी शिक्षा प्राप्त नहीं की थी। उन्होंने अपने पास की सैद्धांतिक खगोलशास्त्रीय शोध प्रबंधों की पांडुलिपियों को स्वयं पढ़कर ही खगोलशास्त्र में रुचि का विकास किया तथा ज्ञान प्राप्त किया था। यह सुस्पष्ट है कि 17वीं और 19वीं शताब्दियों के बीच खगोलशास्त्र में हुई क्रांतिकारी प्रगति से, उसके अंत तक और यहां तक कि अपने खगोलखास्त्रीय कैरियर के अंत तक भी वह उससे बहुत थोड़ा, अछूते ही रहे। वे पारंपरिक स्वरूप में एक सम्पूर्ण सैद्धांतिक खगोलशास्त्री बने रहे और अधिकांश अद्यतन विकास से अप्रभावित रहे।

पठानी सामंत चंद्रशेखर

चंद्रशेखर एक समर्पित अवलोकनकर्त्ता थे और उन्होंने स्वयं द्वारा बनाये गये उपकरणों से आकाशीय पिण्डों का अति सावधानीपूर्वक अवलोकन किया। वे इस तथ्य से अत्यंत बेचैन थे कि पारंपरिक सैद्धांतिक सिद्धांतों के माध्यम से गणना किये गये तथ्य उनके अवलोकनों के साथ मिल नहीं रहे थे। इसी तरह की समस्या का सामना 18वीं शताब्दी के आरंभ में सवाई जयसिंह को भी करना पड़ा था, तथा उन्हें पंचागीय तत्वों के संशोधन के लिए विशालकाय राजगीरी वेधशालाओं का निर्माण कराना पड़ा था। इन समस्याओं के लिए जिम्मेदार एक मूल कारक यह था कि पारंपरिक भारतीय खगोलशास्त्रीय गणनाएं इतनी प्रलुप्त हो गई थीं कि वे अवलोकनों द्वारा सत्यापित गणनाओं से दूर हो गई थीं। भारतीय खगोलवेत्ताओं द्वारा अयनांश अर्थात् विषुत पुरस्सरण (precision of equinoxes) का अवलोकन वैदिक काल से किया जाता रहा है और जंत्री संबंधी अवयवों, जैसे बीज त्रुटि सुधार, की गणना थी उसी समय से की जाती रही है। बीज त्रुटि सुधार, विषुव पुरस्सरण के परिणामस्वरूप जंत्री संबंधी अवयवों में आये परिवर्तन के समायोजन हेतु समय के साथ–साथ किये जाने वाले तदर्थ त्रुटि सुधार होते हैं। सवाई जयसिंह या पठानि सामंत के समय से लगभग एक हजार वर्ष पूर्व ही अवलोकनात्मक जांच का महत्त्व कम हो गया था और जंत्री संबंधी अवयवों में कोई त्रुटि सुधार नहीं हो पाया था। इस तरह की उलझनों ने सामंत को हाथ से बने हुये उपकरणों का प्रयोग करने के लिए प्रेरित किया। इन उपकरणों की सहायता से वे जंत्री संबंधी अवयवों की त्रुटियां दूर करते थे और भविष्य के अवलोकनों के लिए चिरसम्मत सैद्धांतिक रूप में पूर्वानुमानित जंत्री संबंधी अवयवों का सृजन करते थे। इस प्रकार से प्राप्त होने वाले जंत्री संबंधी अवयव आश्चर्यजनक रूप से शुद्ध थे। सामंत का कार्य भूकेंद्रित ब्रह्माण्ड की मान्यताओं से चिरसम्मत रूप में काफी मेल खाता था, यद्यपि उनके अपने मॉडल में पृथ्वी को छोड़कर अन्य ग्रह सूर्य के चतुर्दिक् चक्कर लगाते थे।

विश्व की दोनों प्रकार की प्रणालियों भूकेंद्रित अथवा सूर्यकेंद्रित में जंत्री संबंधी गणना करने के लिए समतुल्य गणितीय सूत्र उपलब्ध हैं, और संभावित खगोलीय घटनाओं के परिशुद्ध पूर्वानुमान लगाने के लिए अवलोकित परिघटना के लिए मात्र गणनाओं के उचित 'फ्रेमवर्क' की आवश्यकता पड़ती है। इस प्रकार 'कॉपरनिकन क्रांति' पर विचार करने अथवा उसे स्वीकार करने की सामंत की अक्षमता उसे अपने जीवन में घटित होने वाली समकालीन खगोलीय घटनाओं का अवलोकन करने और उनके विषय में कई परिशुद्ध गणनायें करने से रोक नहीं पाती थी। उनके जीवनकाल में घटित होने वाली परिघटनाओं में सर्वाधिक रुचिकर परिघटना 9 दिसंबर, 1874 को शुक्र ग्रह का पारगमन थी।

यह दुर्लभ और प्रेरणादायक घटना भारत सहित विश्व के कई अन्य भागों से भी देखी जा सकती थी। इसके आठ वर्ष पश्चात् यानि 1882 का शुक्र ग्रह का पारगमन भारत से देख पाना संभव नहीं था। इसी प्रकार की दुर्लभ और रुचिकर घटना 8 जून, 2004 को पुन: भारत तथा विश्व के अन्य भागों से देखी जा सकेगी। यह गैर–पेशेवर खगोलविदों और शिक्षकों में काफी उत्साह का संचार कर रही है। इस घटना में निहित उत्साह का कारण यह है कि इसके माध्यम से, शुक्र ग्रह के पारगमन के समय का पर्यवेक्षण करके, विश्व भर के विद्यार्थियों के लिए पृथ्वी से सूर्य की दूरी का ऐतिहासिक मापन संभव हो सकता है।

वर्ष 1874 में भी अवश्य ही ऐसा ही उत्साह रहा होगा। उस समय क्योंकि भारत भी विश्व के उन स्थानों में से एक था, जहां यह घटना घटित हुई थी, अत: दुनिया भर के खगोलवेत्ता भारत के अभियान पर आ रहे थे।

उस समय भारत की ब्रिटिश सरकार के अधीन कार्यरत वेधशालाओं ने भी इस घटना के अध्ययन के प्रयास किये थे। और तब इस घटना के अवलोकन के लिए निजी व्यक्तियों और देशी रियासतों के स्तर पर, उन स्थानों पर वेधशालायें निर्मित करायी गयीं थीं, जहां इस घटना का महत्त्व कुछ ज्यादा था, अर्थात् जिन स्थानों पर इस घटना को अधिक स्पष्ट रूप से देखा जा सकता था। इस घटना के लोकप्रियकरण के प्रयासों के साक्ष्य भी देखे जा सकते हैं। उदाहरणार्थ, मद्रास वेधशाला के चिंतामणि रघुनाथाचारी ने इस घटना के लोकप्रियकरण के लिए एक पुस्तिका निकाली थी, जिसका उर्दू सहित कई भाषाओं में अनुवाद कराया गया था। परंतु संभव होते हुए भी, उड़ीसा के सुदूर खांडपारा क्षेत्र में, जहां सामंत को इस घटना की जानकारी मिल सकती, इस घटना की वार्ता नहीं पहुंच सकी।

पठानी सामंत ने 1874 की इस घटना का अवलोकन किया था और अपने 'सिद्धांत दर्पण' में यह लिखा था:

(पी.सी. नायक एवं एल सत्पथी–बुलेटिन ऑफ एस्ट्रोनोमिकल सोसायटी ऑफ इंडिया)

अरुण कुमार उपाध्याय ने 'सिद्धांत दर्पण' के अपने अनुवाद में इस श्लोक का भावार्थ इस प्रकार लगाया है– *''शुक्र के कारण सूर्य ग्रहण–शुक्र के कारण होने वाले सूर्य ग्रहण का पता लगाने के लिए उनके बिम्ब (कोणीय व्यास) तथा तारा ग्रह के आकार की जानकारी बनायी गयी है। कलि वर्ष 4975 (1874 ई.) में शुक्र के कारण होने वाला सूर्य ग्रहण वृश्चिक राशि में अवलोकित किया गया था। तब शुक्र बिम्ब सूर्य के बिम्ब के 1/32वें भाग के रूप में देखा गया था, जो 650 योजन बनता है। अत: यह भली–भांति सिद्ध हो जाता है कि शुक्र तथा अन्य ग्रहों के बिम्ब सूर्य के बिम्ब से काफी छोटे होते हैं।''*

क्या सामंत ने ऐसा सुना था कि शुक्र पारगमन होने वाला है और इसे देखने के लिए तैयार रहना चाहिए, या अपने जीवनकाल में जंत्री संबंधी तत्त्वों के परिशुद्ध सृजन के अनुभव के आधार पर उन्होंने पता लगा लिया था कि शुक्र पारगमन होने वाला है? दूसरी बात के सही होने की संभावना अधिक है क्योंकि उस समय उड़ीसा में यूरोप की किसी प्रकार की खगोलीय गतिविधि के स्पष्ट साक्ष्य उपलब्ध नहीं हैं। पलेर्मो वेधशाला (इटली) का अभियान उड़ीसा के पड़ोसी राज्य बंगाल के मुद्दापुर (मधुपुर) नामक स्थान के लिए था। क्या ऐसी कोई सूचना हो सकती थी जो खांडपारा तक पहुंच गयी हो? यह निश्चित नहीं है और न ही इसका कोई प्रमाण उपलब्ध है। यदि ऐसी कोई सूचना वहां तक पहुंच भी गयी होती, तो भी सामंत स्वयं गणना करके और अपनी गणना के परिणामों को उस सूचना से उचित मिलान किये बगैर उसे स्वीकार नहीं कर सकते थे।

सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि ऐसा संभव है कि सामंत ने न केवल शुक्र पारगमन का अवलोकन ही किया होगा, बल्कि 17वीं और 19वीं शताब्दियों में विश्व में शुक्र पारगमन की लोकप्रियता और जिज्ञासा से दूर होते हुए भी, अपनी ही गणनाओं से इसका पूर्वानुमान भी लगाया होगा।

शुक्र और सूर्य के बिम्बों अथवा आभासी कोणीय व्यासों का अनुपात 1/32 होने का उल्लेख बड़ा रुचिकर है।

इन अवलोकनों की तिथि अर्थात् 9 दिसंबर, 1874 को, सूर्य और शुक्र के आभासी कोणीय व्यास क्रमश: 32 मिनट, 29 सेकेंड और 1 मिनट, 3 सेकेंड (चापीय माप) थे। इस प्रकार से प्राप्त अनुपात: 1: 30: 93 बैठता है। इस अनुपात में एक पारगमन से दूसरे पारगमन के दौरान आयी भिन्नता का कारण कक्षकों का दीर्घवृत्तीय होना है। उदाहरणार्थ, वर्ष 2004 में आभासी व्यास सूर्य के लिए 31 मिनट, 31 सेकेंड और शुक्र के लिए 58 सेकेंड (चापीय माप) है, जिससे आगामी शुक्र क्रांति के लिए अभीष्ट अनुपात 1:32.6 बैठता है।

पठानी सामंत ने अपने सभी अवलोकन बगैर किसी दूरबीन के, हाथ से बनाये गये उपकरणों द्वारा संपन्न किये थे अैर उनकी परिशुद्धता असाधारण थी। शुक्र पारगमन से संबंधित सैद्धांतिक गणनाओं और अवलोकनों में सामंत की उपलब्धियां, पुरानी होते हुए भी जेरेमियाह होरोक्स की उपलब्धियों के समान मानी जाती हैं।

डॉ. (श्रीमती) एन. रत्नाश्री नेहरू तारामंडल, नई दिल्ली की निदेशिका हैं तथा खगोलशास्त्र के लोकप्रियकरण में कार्यरत हैं।

पृष्ठ... 23 का शेष

आगे की सीट पर बैठें : गाड़ी के ज्यादा आरामदायक हिस्से में बैठें। गाड़ी के अगले हिस्से में कम झटके लगते हैं। ड्राइवर को भी यह हिदायत दे दें कि न तो झटके से ब्रेक लगाएं और न ही झटके से गाड़ी आगे बढ़ाएं।

सीधे सामने देखें : गाड़ी जब चल रही हो, तो सीधे आगे देखना उत्तम रहता है। जब गाड़ी पहाड़ियों से गुजर रही हो, उस समय क्षण–क्षण बदलता आगे का दृश्य काफी विचलित कर सकता है, इसलिए अपनी नजर सीधे आगे सड़क पर रखें। बीच–बीच में गाड़ी रोक कर घाटियों और पहाड़ों की मनोहर छटा को निहारें।

गाड़ी चलते समय न पढ़ें : ऐसी गतिविधियों से बचें, जिनसे आंखों को किसी नजदीकी वस्तु पर केंद्रित करना पड़े। किताबें–पत्रिकाएं पढ़ना, बुनाई करना या ताश खेलना जैसी गतिविधियां मोशन सिकनेस को बढ़ा सकती है। यात्रा के दौरान अपना सिर सीधा व सीट पर आराम से टिकाकर रखें।

ताजी हवा की कमी न होने दें : हमेशा पर्याप्त मात्रा में ताजी हवा गाड़ी के अंदर आने दें। पूरी तरह से बंद और बदबूदार माहौल स्थिति और बिगाड़ सकता है। धूम्रपान न करें और न ही धूम्रपान करने वालों के करीब बैठें।

गंदी हवा से बचें : रास्ते में जहां हवा बदबूदार या बुरी महसूस होती हो वहां गाड़ी न रोकें। अगर गाड़ी में बैठे किसी व्यक्ति को मोशन सिकनेस हो तो दूर रहें और उसे खुद को अच्छी तरह साफ करने दें।

तनावमुक्त रहें : ठंडे मन से बैठे रहें। खराब मूड स्थिति को ज्यादा खराब कर देता है, जबकि हल्का–फल्का मूड स्थिति को सहज कर देता है।

जब अन्य उपाय दगा दे जाएं : अगर उल्टी शुरू हो जाए, तो उल्टी रोकने की गोली लेने का कोई मतलब नहीं रह जाता। ऐसी स्थिति में यात्रा बीच में रोककर आराम करें। इससे मामला काफी कुछ शांत हो जाता है। अगर फिर भी बेचैनी बरकरार हो, तो बेहतर है किसी डाक्टर को तलाश करें। एंटीहिस्टेमीन का एक इंजेक्शन शीघ्र स्थिति सुधार सकता है।

◆◆◆